भास्कर रामचन्द्र तांबे

अस्तर पर छपे मूर्तिकला के प्रतिरूप में राजा शुद्धोदन के दरबार का वह दृश्य है, जिसमे तीन भविष्यवक्ता भगवान बुद्ध की माँ—रानी माया के स्वप्न की व्याख्या कर रहे हैं। नीचे बैठा है लिपिक, जो व्याख्या का दस्तावेज लिख रहा है। भारत मे लेखन-कला का यह संभवतः सबसे प्राचीन और चित्रलिखित अभिलेख है।

नागार्जुनकोण्डा, दूसरी सदी ई०

सौजन्य : राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली

भारतीय साहित्य के निर्माता

# भास्कर रामचन्द्र तांबे

लेखक

जयंत वष्ट

अनुवादिका

अरुणा नारलीकर

साहित्य अकादेमी

*Bhaskar Ramchandra Tambe* : Hindi translation by Aruna Narlikar of Jayant Vasht's monograph in Marathi. Sahitya Akademi, New Delhi (1986), SAHITYA AKADEMI
REVISED PRICE Rs. 15·00



**प्रथम संस्करण** : 1986

**साहित्य अकादेमी**

**प्रधान कार्यालय**
रवीन्द्र भवन, 35, फ़ीरोज़शाह मार्ग, नयी दिल्ली 110 001

**क्षेत्रीय कार्यालय**
ब्लाक V-बी, रवीन्द्र सरोवर स्टेडियम, कलकत्ता 700 029
29, एलडाम्स रोड (द्वितीय मंज़िल), तेनामपेट, मद्रास 600 018
172, मुम्बई मराठी ग्रन्थ संग्रहालय मार्ग, दादर, बम्बई 400 014

SAHITYA AKADEMI
REVISED PRICE Rs. 15·00

**मुद्रक**
स्वतन्त्र भारत प्रेस,
दिल्ली 110 006

# अनुक्रम

# 1

# प्रारंभिक जीवन एवं संस्कार

भास्कर रामचन्द्र तांबे का जन्म शक संवत् 1795 के कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की छठी तिथि अर्थात् 27 अक्टूबर, 1873 को झाँसी के पास स्थित मुंगावली नामक गाँव में हुआ था। यह गाँव उस समय ग्वालियर स्टेट के अंतर्गत आता था। तांबे परिवार के पूर्वक कोंकण के खेटकुई गाँव के थे। अपने राज्य का विस्तार करने की महत्त्वाकांक्षा से उत्तरी भारत में आने वाले अनेक मराठी परिवारों में तांबे परिवार भी था।

भास्करजी के दादा श्री गंगाधर शास्त्री संस्कृत के श्रेष्ठ पंडित तथा सुप्रसिद्ध वैद्य भी थे। उनकी पत्नी भास्करजी की दादी—झाँसी के पुसालकर घराने की कन्या थीं। भास्करजी के पिता रामचन्द्र पन्त गगाधरजी के चार पुत्रों में से एक थे। इनके सबसे बड़े पुत्र गोपालराव भास्करजी के बड़े भाई थे। रामचद्र पंत झाँसी के राज्य कार्यालय में क्लर्क थे। भास्करजी की माता यमुनाबाई देवास के डोंगरे परिवार से आई थी। बड़े भाई गोपालराव के अलावा भास्कर जी के दो छोटे भाई गणपत राव और विष्णु पत भी थे। पिता की छत्रछाया भास्कर-जी को अधिक दिनों तक नही मिल सकी। सन् 1885 के आसपास उनके पिता की मृत्यु हो गयी।

## प्रारंभिक शिक्षा संस्कार

बालक भास्कर का बचपन मुंगावली, ग्वालियर तथा झाँसी में बीता। त्र्यंबक अप्पाजी पुसालकर की पाठशाला में उनके विद्यार्थी जीवन का श्रीगणेश हुआ। मोटे तौर पर सरल तथा प्रारंभिक लेखन, पुस्तक-पठन, गणित के ज्ञान तथा मोतियो जैसे सुंदर अक्षर-लेखन तक ही यह शिक्षा सीमित थी। भास्कर की लिखावट सुवाच्य तथा सुंदर थी। इस कालखंड में घर पर कुछ-न-कुछ

पढ़ते रहने के कारण उनके हृदय पर अच्छे साहित्यिक संस्कार पड़े। माँ को पुस्तकें पढ़कर सुनाने के निमित्त, उन्होने 'पांडवप्रताप', 'संतलीलामृत', 'रुक्मिणी स्वयंवर' जैसे धार्मिक तथा भक्तिपूर्ण ग्रंथ पढ़े। समय बिताने के लिए किया गया यह पठन भावपूर्ण रसिकता से किया गया था। इसका प्रभाव इतना गहरा होता था कि भाव-विभोर माता तथा पुत्र की आँखों से अविरत अश्रुधारा बहती रहती। भास्कर के हृदय में इससे भक्ति-भावना उत्पन्न हुई होगी। उनकी कविताओ में दिखनेवाली भक्ति-भावना तथा श्रद्धा का मूल स्रोत यहीं रहा होगा।

इन्हीं दिनो भास्कर ने अन्य पुस्तकों के साथ-साथ तुलसी रामायण भी पढी। मराठी में जितना महत्त्व ज्ञानेश्वरी को मिला है, उतना ही हिन्दी में तुलसी रामायण को प्राप्त है। अच्छी समझ एवं स्मरणशक्ति के कारण भास्कर को इससे खासा लगाव हो गया और इस अल्पायु में ही उन्होंने इसका कई बार पारायण कर डाला। इस प्रकार हिन्दी भाषा ज्ञान द्वारा भास्कर का हिन्दी के उच्च कोटि के साहित्य से परिचय हुआ।

अपने परिवार के परंपरागत यजमानी-व्यवसाय को क़ायम रखने के विचार से भास्कर ने वेदपठन, सौर, पवमान, रुद्र, श्रावणी (श्रावण मास मे नये जनेऊ पहनाने की धार्मिक विधि), पूजा करवाने इत्यादि का अभ्यास किया। देखा जाए तो इस कालखंड में उनकी स्कूली शिक्षा की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया। परन्तु किसी-न-किसी कारण से किये जाने वाले वाचन का परिणाम उनपर गहरा हो रहा था। पढ़ते-पढते कथा के पात्रों से वे एक रूप हो जाते थे। कल्पना-शक्ति सक्रिय होती जाती थी। हृदय में भावनाओ का खेल शुरू हो जाता था। स्वय भी कुछ लिखने की इच्छा उनके मन में इस समय अवश्य उत्पन्न होती होगी।

कुछेक चमत्कारों का अनुभव भी उन्हें इसी समय हुआ। मुंगावली के घर में विशेष दिनों में छत पर से अचानक ही पत्थर गिरने शुरू हो जाते थे। इसका कारण किसी की समझ में नही आता था। परन्तु इसके शुरू होते ही भास्कर के दादाजी मंत्रोच्चार करने लगते थे जिसके साथ ही पत्थर गिरने बंद हो जाते थे। भास्कर इसे किसी दैवी शक्ति का खेल समझते थे। मंत्र-तंत्र पर जल्दी से विश्वास कर लेने की यही तो उम्र होती है। विश्व में अवश्य कोई बड़ी शक्ति है, यह उनका हृदय मानता था। परन्तु वह क्या है, यह समझ में नहीं आता था।

सन् 1888 में उन्हें अपने नाना श्री बलवंतराव डोंगरे के पास देवास जाने का अवसर मिला। लम्बी यात्रा का यह पहला मौक़ा था। भोपाल में उन्होंने पहली बार 'ट्रेन' देखी। भोपाल के सुप्रसिद्ध तालाब से निकले झरने के पास विश्राम के लिए जब वे बैठे तब उस वातावरण का उनके हृदय पर बड़ा गहरा

असर पड़ा। भावविभोर होकर निसर्ग के साथ एक रूप हो जाने की अवस्था का प्रत्यक्ष परिणाम कालान्तर में 'झरा' (झरना) नामक कविता के लेखन में प्रगट हुआ।

भास्कर के जीवन को देवास में एक नई दिशा प्राप्त हुई। नाना बलवंत और नानी मथूबाई की जीवन-पद्धति का उनपर गहरा प्रभाव पड़ा। नानाजी का निःसंकोची, सत्यप्रेमी, दो टूक तथा तेजस्वी स्वभाव उनके व्यक्तित्व में प्रतिबिंबित हुआ। बलवंतराव वेद-साहित्य एवं संस्कृत के श्रेष्ठ अभ्यासक थे। स्वआचरण मे अत्यत कर्मठ होते हुए भी वे बुद्धि स्वातंत्र्य तथा नयी विचार-धारा के प्रति समुचित आदर भाव रखते थे। उन्होंने घर के सब बच्चों को अंग्रेजी सीखने के लिए प्रोत्साहन दिया।

श्रेष्ठ स्तर के व्यक्ति अपने जीवन की सार्थकता किसमें मानते हैं, इस बात का पता उन्हें अपने नाना तथा नानी की मृत्यु के समय लगा। उसका चिरंतन परिणाम भास्कर के जीवन पर होता रहा। मृत्यु को निकट जानकर बलवंत-राव जी ने जमीन लीप कर तथा कम्बल बिछाकर स्वयं मृत्युशय्या तैयार की, स्नान करके धौत-वस्त्र धारण किया और दर्भ की शय्या पर शरीर त्याग दिया। नानीजी की मृत्यु भी बड़ी विलक्षण रीति से उज्जैन में हुई। उनका स्वास्थ्य ठीक न था। घर की स्मार्तग्नि द्वारा ही और्ध्वदैहिक अग्नि संस्कार किया जाना चाहिए, यह मालूम होने के कारण उन्होने शनिवार कार्तिकी अमावस्या को अग्नि प्रदीप्त की। 'गीता का जयघोष होता रहे। मेरा जीवन स्वर्ण होने जा रहा है। सौभाग्य का कुमकुम-हल्दी लिए मैं जा रही हूँ।' यही उनके अंतिम शब्द थे। इसके बाद वे कुछ नहीं बोलीं। भास्कर उस समय देवास मे थे। मन बेचैन था इसलिए वे माता के साथ उज्जैन चले आये लेकिन तब तक सब समाप्त हो चुका था।

गृहस्थ धर्म का उत्तम रीति से पालन करने के बाद वानप्रस्थाश्रम के काल में निर्वाण की सूचना पाते ही सारी मोह-माया त्याग कर 'इदं न मम!' की भावना ले मोक्ष की ओर अग्रसर होने वाले नाना-नानी भास्कर के मन पर बड़े गहरे संस्कार छोड़ गए। उन संस्कारों की छाप उनके जीवन पर, उनके काव्य पर सतत एवं सर्वत्र पड़ी। मन की यह अवस्था 'पूर्णाहुति' में काव्यरूप में दिखाई देती है। 'जीवन एक यज्ञ है' यह भावना आगे भी उनके संपूर्ण जीवन का आकार निश्चित करने में सहायक रही।

एक बार भास्कर के शिक्षक काशीनाथ पंत लेले की देवास के रास्ते पर भिक्षा माँगने वाले एक साधु से भेंट हुई। साधु का नाम था बलभीम बुवा। इनके सहवास के प्रभाव से भास्कर के भाई गणपतराव कुछ समय तक विक्षिप्त से हो गये थे। बलभीमबुवा को ज्ञानेश्वरी, अमृतानुभव, भागवत इत्यादि ग्रथ

कंठस्थ थे। दर्शनशास्त्र का भी उन्हे विस्तृत ज्ञान था। इनके सत्संग से भास्कर का भी दर्शन से लगाव बढ़ा।

भास्कर के शिक्षा हेतु अपने नानाजी के पास रहने के लिए आने से पूर्व उनकी स्कूली पाठ्यक्रमों में अनुसार क्रमबद्ध पढ़ाई नहीं हो पायी थी। उनके शिक्षक श्री काशीनाथ लेले के ध्यान में यह बात आयी कि बच्चे को मराठी भाषा के अतिरिक्त विशेष कुछ नहीं आता। परन्तु भास्कर के धार्मिक ग्रंथों के ज्ञान से वे बहुत प्रभावित हुए। और यह विद्यार्थी सर्वसाधारण से अलग है, यह बात उनके ध्यान में आ गयी। शिक्षक ने उन्हें चौथी कक्षा में भर्ती किया। अपने शिक्षक का विश्वास प्राप्त करने का ध्येय सामने रखकर भास्कर ने केवल चार महीने बाद होनेवाली परीक्षा में प्रथम क्रमांक प्राप्त कर दिखाया।

परन्तु कुछेक घरेलू परेशानियों के कारण उनकी पढ़ाई यही रुक गई। उन्हें उज्जैन में अपने मामा श्री रामराव डोंगरे के पास भेजा गया। यहाँ पर ग्वालियर स्टेट के वकील कन्हैयालालजी के पास वे किरानी का कार्य करने लगे। इस अनुषंग से उन्हें क़ानून की तथा उर्दू भाषा की जानकारी प्राप्त हुई। भास्कर के मामा केशवराव और उनके मित्र नारायणराव रास्ते इस समय प्रवेश परीक्षा की तैयारी कर रहे थे। उनसे बातचीत करते समय भास्कर के स्वाभिमान को चोट पहुँची। इन दोनों से पहले प्रवेश परीक्षा उत्तीर्ण करने की प्रतिज्ञा कर भास्कर रातों रात पैदल चलकर देवास पहुँचे और लेले मास्टरजी से मिले। 'मास्टरजी मुझे अंग्रेजी सिखाइये,' भास्करजी ने उनसे आग्रह किया। लेलेजी ने बलवंतराव डोंगरे की सहायता से भास्कर जी कि शिक्षा की व्यवस्था की। आगे भास्कर ने भी आदर्श विद्यार्थी बनकर नाम कमाया।

लेले मास्टरजी एक आदर्श शिक्षक थे। पाठ्यक्रम के विषयों के अलावा वे अन्य विषय भी बड़ी योग्यता से पढ़ाते थे। ज्योतिष-शास्त्र, वनस्पतिशास्त्र, प्राणीशास्त्र आदि विषयों पर व्याख्यानों का आयोजन करके उन्होने नये-नये विषयों से विद्यार्थियों का परिचय कराया। एक बार शनिवार के एक व्याख्यान में उन्होंने चॉसर से लेकर टेनिसन तक के सारे अंग्रेज़ी कवियों के बारे में बच्चों को जानकारी दी। हस्त व्यवसाय, चित्रकला, बढ़ई का काम, तथा संगीत सिखाने की व्यवस्था भी की गयी थी। ऐसे आदर्श शिक्षक के विद्यार्थी बनकर 1893 में भास्कर ने इलाहबाद की मैट्रिक परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की।

स्कूल में पढ़ते समय भी कुछ लिखने की आकांक्षा उनके हृदय में थी। अपनी पहली कविता उन्होने स्कूली जीवन में ही लिखी थी। इसी समय पढ़ाई के साथ-साथ व्यायाम में भी उनकी रुचि बढ़ी। स्कूल में वे आट्या-पाट्या (महाराष्ट्र का एक प्रचलित देशी खेल), खो-खो, फुटबॉल तथा टेनिस खेलते

थे। मैट्रिक की परीक्षा तथा उनके परिणाम की अवधि में भास्कर ने अनेक पुस्तकें पढ़ीं। चिपलूणकर तथा आगरकर के निबंध पढे। 'केसरी', 'सुधारक' और 'विविधज्ञान विस्तार' पत्रिकाएँ नियमित रूप से पढ़ीं। लेले मास्टरजी की सहायता से संस्कृत काव्य तथा नाटकों का अध्ययन किया। यहीं पालग्रेवा की 'गोल्डन ट्रेजरी', भी पढ़ने को मिली।

इसी समय काशीराम लेले भास्कर को अपने साथ महाराष्ट्र ले आये। पुणे तथा बंबई जैसे शहरों के अलावा उन्होंने महाराष्ट्र के सुप्रसिद्ध क़िले भी भास्कर को दिखाये।

मैट्रिक के बाद विश्वविद्यालय में शिक्षा ग्रहण करने को भास्करजी की इच्छा पूर्ण न हो सकी। घरेलू दिक्क़तों के कारण शिक्षा अपूर्ण रह जाने से भास्कर दुखी है, यह जानकर उनकी नानी ने उन्हें सांत्वना दी और कहा—'इस तरह शोक मत करो। तुम्हारे जीवन में किसी प्रकार का अभाव नही होगा। सांसारिक सुख-दुख केवल विद्या पर नहीं बल्कि भाग्य पर भी आश्रित होते हैं।' यह आशीर्वाद भास्कर को आने वाले यश का सूचक लगा। भास्कर हमेशा यही कहा करते थे कि नानी के आशीर्वाद से ही उनका जीवन सफल हुआ।

**साहित्यिक संस्कार—पहली कविता :**

स्कूली जीवन में लेले मास्टरजी की मदद से भास्कर के साहित्य-अध्ययन का शुभारंभ हो गया था। कविताएँ पढ़ते-पढ़ते उनका अनुवाद या रूपान्तर करने की इच्छा उनके मन में जागी। एक दिन लेले मास्टरजी को मोड़-मरोड़ कर फेंका हुआ एक काग़ज़ मिला, जिस पर लिखा था :

"बुद्धि के सीमान्त पर, जबतेरी लीला न समझ सकें
हे ईश्वर, मेरा दुरभिमान शर्म से तब झुके।"[1]

भास्कर के हाथों से फेंके गये इस कागज पर दो पक्तियों की यह कविता उन्होंने स्वयं ही लिखी थी, यह उनके मास्टर लेले जी ने जान लिया। कवि मोरोपंत की शैली में लिखी गयी इन पंक्तियों को पढ़कर लेले जी साश्चर्य आनदित हुए। यह कविता उन्होंने अपने मित्र श्री कृष्णराव मुले तथा विष्णुपंत कुंटे को भी पढ़ने को दी।

भास्कर की काव्य प्रतिभा को प्रोत्साहन देने की दृष्टि से लेले मास्टरजी ने उनकी साहित्यिक रुचियों की दिशा की ओर ध्यान देना शुरू किया। मैट्रिक की

---

1. 'अहा मतिगती खुटे तव कृती परी नाकळे।
बघूनि अशि'ही स्थिति दुरभिमान देवा गळे॥'

कक्षा में संस्कृत पढ़ाने के निमित्त से 'शाकुंतल', 'वेणीसंहार', 'उत्तररामचरित', इत्यादि नाटक तथा बलबंत कमलाकर (माकोडे) के 'रसप्रबोध' एवं अन्य ध्वनिविषयक ग्रंथों से परिचय कराया। लेलेजी ने उच्च कोटि का साहित्य तथा उच्च कोटि की कलाकृतियों से भास्कर की प्रतिभा को सींचा जिससे कि उसे नयी प्रेरणा और स्फूर्ति मिले। वे उन्हें संगीत के कार्यक्रमों में ले गए। उत्तम कथाकारों की कथाएँ सुनवाई। स्वयं खर्च उठाकर उन्होंने भास्करजी को अच्छे-अच्छे नाटक दिखाए।

एक बार पाठशाला के किसी समारोह के लिए लेले मास्टरजी ने उन्हें अंग्रेजी भाषा का गुणगान करनेवाला, मेकॉले द्वारा लिखा गया एक लेख कठस्थ करने को कहा। भास्कर ने ऐसा करने से इन्कार कर दिया और उसके बदले संस्कृत भाषा का गुणवर्णन करने वाले पचीस-तीस श्लोक स्वय लिखकर तैयार किये। मैट्रिक की परीक्षा के बाद युवा भास्कर की साहित्योपासना की शुरुआत हुई। उन्नीसवीं सदी के स्कॉट, लिटन, मेकॉले का साहित्य उन्होंने पढ़ा। 1903 से 1908 के बीच के समय में अच्छा मानसिक तथा शारीरिक स्वास्थ्य और आर्थिक निश्चितता प्राप्त होने के कारण उनके अध्ययन की गति में तीव्रता आई। इसी कालखंड में उन्होंने बायरन, शेली, कीट्स, वर्ड्सवर्थ, कोलरिज, टेनिसन, ब्राउनिंग जैसे अंग्रेजी के विख्यात कवियों की रचनाओं का अध्ययन किया। शेक्सपियर के 'सॉनेट्स' भी बढ़े। टेनिसन का 'इन मेमोरियम' तो उन्हें पूरा कठस्थ ही हो गया था। बायरन उनका प्रिय कवि था। अंग्रेजी के ब्रैडले, ड्रायडन, हैजलिट, ब्रुक, आर्नल्ड इत्यादि समीक्षकों के लेख उन्होंने पढ़े। काट, स्पेन्सर आदि के दर्शनशास्त्र को उन्होंने बड़ी रुचि के साथ पढ़ा।

भास्कर ने अंग्रेजी साहित्य के साथ-साथ भारतीय साहित्य का भी अध्ययन किया। पहले पढ़े हुए संस्कृत ग्रथों का शांत चित्त से पुन: एक बार परिशीलन किया। 'रघुवंश', 'किरातार्जुनीय', 'मेघदूत' इत्यादि जैसे संस्कृत काव्य, तथा 'शाकुन्तल', 'उत्तररामचरित', 'मालतीमाधव', 'मृच्छकटिक', जैसे नाटकों का भी अध्ययन किया। बाण की 'कादम्बरी' और भवभूति का 'उत्तरराम-चरित' उन्हें ज़बानी याद थे। साठेशास्त्री की सहायता से उन्होंने 'ध्वन्यालोक' एवं 'रसगंगाधर' नामक काव्य-शास्त्रीय ग्रंथों का गहरा अध्ययन किया।

मराठी संतों के साहित्य से भास्कर का बचपन से परिचय था। संत एक-नाथ की सारी काव्य रचनाएँ उन्होंने पढ़ीं। मोरोपंत एवं ज्ञानेश्वर का साहित्य भी पढ़ा। तुकाराम उन्हें अत्यंत प्रिय थे। इसी समय के गीता, उपनिषद् तथा सांख्य दर्शन के अध्ययन से उनके दर्शनशास्त्र के ज्ञान में और वृद्धि हुई। जैन तथा बौद्ध धर्म का भी अध्ययन उन्होने किया। अपने एक निबंध में उन्होंने जैनों पर सांख्य के प्रभाव विषय पर अपने विचार प्रगट किये थे। 'महाश्वेतेचे निवास-

स्थान किंवा कवितेचे मूळ' (सरस्वती का निवासस्थान अथवा कविता का मूल स्रोत) लेख में उन्होंने अपना बाणभट्ट के प्रति प्रेम तथा काव्य के विषय मे मतों का प्रदर्शन किया।

क़ानून की पढ़ाई करते समय भास्कर को उर्दू भाषा सीखने का अवसर मिला, यह हम पहले ही जान चुके हैं। सूफ़ी दर्शनशास्त्र का अध्ययन करते समय उन्हें इस भाषा के ज्ञान से बड़ा लाभ हुआ। उनका साहित्य-ज्ञान सर्वश्रुत होने के कारण कही कोई साहित्य-विषयक अथवा ललित कला-विषयक प्रश्न उपस्थित होने पर भास्कर की राय आदरपूर्वक ली जाती थी।

भास्कर ने संगीत के शौक़ को गंभीर अध्ययन की मदद से निखारा था। नारायण भगवान नामक गायक द्वारा उन्होंने संगीत की शास्त्रोक्त जानकारी प्राप्त की। रागदारी का अभ्यास किया। सरोदवादक हाफ़िज़ ख़ाँ, राजाभैय्या पूछवाले, श्री ना० रातंजनकर जैसे संगीतज्ञ भास्कर को अपना संगीत सुनाकर स्वयं को धन्य मानते थे। उनके संगीत संबंधी विचारों को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था।

भास्कर ने साहित्य का पठन, मनन तथा चिंतन किसी विशिष्ट दृष्टिकोण अथवा निश्चित साँचे में बँधकर नहीं किया था। उनकी रसिकता शुद्ध स्वरूपा थी, जो निरंतर विकसित होती गई। श्रेष्ठ एवं प्रौढ़ साहित्य का प्रभाव उनकी भाषा तथा अभिव्यक्ति पर प्रतिबिंबित हुआ। रवीन्द्रनाथ ठाकुर का साहित्य भी उन्हें प्रिय था। इस सारे वाचन मनन से उनका साहित्यिक व्यक्तित्व समृद्ध-शाली बना।

**गृहजीवन :**

भास्कर का विवाह सन् 1897 में रतलाम के श्री त्र्यंबकराव जावडेकर की पुत्री बाळूबाई से हुआ। विवाह के बाद उनके जीवन में परिवर्तन आया। उनकी कविताएँ प्रेम का स्पष्ट प्रदर्शन करनेवाली तथा उत्कटता से लिखी जाने लगीं। उन्होंने स्वयं ही कहा था कि 'मेरी सारी प्रेम कविताएँ पत्नी पर मेरा इतना प्रेम होने के कारण ही लिखी जा सकी।'

भास्करजी का काव्य उनके गृहजीवन से एकरूप हो गया था। उन्होंने आरम्भ से ही गृहस्थाश्रम में काव्य को तथा काव्य में गृहस्थाश्रम को स्थान दिया था। उनकी कविताएँ दाम्पत्य जीवन में, बच्चों की बाल लीलाओं में विकसित हुई थीं। उनके प्रेमगीत भी पत्नी तथा गृहिणी के विषय में लिखे गये हैं, किसी अन्य रमणी पर नहीं। भास्करजी तांबे अपने दाम्पत्य जीवन में डूबे हुए थे। वे जान गये थे कि गृहस्थाश्रम में पत्नी ही धर्म-अर्थ-काम की दात्री है; अतः 'धन्यो गृहस्थाश्रमः' का मंत्र उन्होंने स्वानुभव से मान्य किया था। अपने तृप्त

एवं कृतार्थ गृहजीवन का सपूर्ण श्रेय वे अपनी पत्नी को ही देते थे।

अपने बच्चों के प्रति प्रगट रूप से प्रेम प्रदर्शित करना उस समय प्रचलित न था। वे बच्चों को पढ़ाते थे, गाना सुनवाने साथ ले जाते थे। पुरुष स्त्रियों से बात न करें, ऐसा वातावरण उनके घर में नहीं था। वे चाहते थे कि जिस आनंद की अनुभूति वे स्वय पा सकते थे वह घर के अन्य सदस्यों को भी मिले। अत: पत्नी को भी वे अच्छे कार्यक्रम देखने साथ ले जाते थे। उनकी कुल ग्यारह सन्तानें हुईं। वे कहते है कि प्रत्येक सन्तान के जन्म के साथ उनके जीवन में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आये। सुखी वैवाहिक जीवन की छाप उनकी कविताओं में स्पष्ट होने से उनकी प्रेम कविता सफल प्रेम कविता बनी। उन्होंने गृहस्थी के सारे दुख-सुख को प्रेम से अपनाकर सुखी तथा कृतार्थ जीवन व्यतीत किया।

**मित्र-परिवार :**

रामभाऊ वैद्य, नारायण राव दुबे और केसरचंद भडारी भास्करजी के स्कूली जीवन से ही मित्र थे। इन मित्रो ने उनकी कविताएँ आरंभ से सराही थीं और उन्हें प्रोत्साहन दिया। रामभाऊ वैद्य ने भास्करजी से पूछे बिना ही उनकी कविताएँ प्रकाशनार्थ भेज दीं। उनके मन में भास्कर के प्रति आदर तथा अभिमान था।

भास्करजी मिलनसार स्वभाव के थे। अत: उनके मित्रों की संख्या भी बहुत थी। कवि न. शं. रहालकर, 'आनंद' पत्रिका के सपादक वासुदेवराव आपटे तथा प्राध्यापक पाटणकर उनके इन्दौर के मित्र थे। भास्कर की कविताएँ उनके ही मुख से सुनना पाटणकरजी को बहुत भाता था। भास्कर स्वयं आनंद के साथ काव्यगायन करते थे। श्री बा. ऊ. देव भी भास्कर के मित्र परिवार में थे। माधवराव पटवर्धन के श्वसुर श्री बाबासाहब गरुड़ और प्रा. शांताराम देसाई भी भास्करजी के निकट के स्नेही थे। भास्करजी चाहे प्रतापगढ़ में हों या गुदरखेड़ा में, इन मित्रों का उनके पास आना-जाना लगा ही रहता था। पत्रलेखन भी नियमित रूप से चलता रहता। भास्करजी का और मुक्त बातूनी स्वभाव और उनकी कविता—इन दोनों के कारण उन्हे अनेक मित्र मिले।

प्राध्यापक वा. गो. मायदेव ने भास्करजी की कविता को संगीतबद्ध करके महाराष्ट्र में लोकप्रिय बनाया। उनकी कविताओ का संग्रह प्रकाशित करवाया। मायदेव जी के ही कारण महाराष्ट्र को भास्करजी की कविता से इतना मोह हुआ। अपनी कविता के माध्यम से भास्करजी गाँव-गाँव में, घर-घर में प्रसिद्ध हो गये। भास्करजी प्रा. मायदेव जी के बारे में कहते हैं—
"पिछले महीने मैंने आपको अपनी अनेक कविताएँ भेजीं। इसलिए नही कि मैं उन्हें अपनी पुस्तक में छपवाने के लिए उत्सुक हूँ, अपितु इसलिए कि अतरात्मा

से कोई शक्ति मुझे प्रेरित करती है कि जो कुछ भी मेरी काव्य-कल्पना उत्पन्न कर सकती है वह मैं आपके चरणों में समर्पित करूँ।" इस कथन के पीछे भावना यह थी कि मायदेव जी ने उनकी कविता को सार्थक किया, उच्च स्थान दिलवाया।

अनेक समवयस्क मित्रो के साथ-साथ उन्हें माधवराव पटवर्धन जैसे मित्र मिले, जिनके नाम में ही 'जादू' था। कवि बा. म. बोरकर भास्करजी को काव्य के 'प्रकाश शिखर' पर विराजित मानते थे। यशवंत, गिरीश, भवानी-शंकर पंडित, सोपानदेव चौधरी, काले जैसे युवा मित्रों का सम्पर्क उन्हें प्राप्त हुआ। हमेशा ही दस-पाँच मित्रों को एकत्रित करके काव्य चर्चा, काव्य गायन करना उनका प्रिय कार्य था। इसके बिना उन्हें चैन नही आता था। मित्रों से उन्हें सच्चा लगाव था। इस संबंध में वे बड़े प्रेम तथा आवेश के साथ बातें करते थे।

स्वभाव से निर्मल तथा निर्मत्सर होने के कारण भास्करजी ने कभी किसी से ईर्ष्या नही की। सदा मित्रों के प्रति कृतज्ञता ही प्रकट की। 'रे अज्ञात सखे-जन' जैसी कविताओं में यह भावना स्पष्ट दिखायी देती है।

**व्यावसायिक जीवन :**

आर्थिक कठिनाइयों के कारण जब भास्कर जी विश्वविद्यालय में शिक्षा ग्रहण नहीं कर सके, तब उन्होंने नौकरी की तलाश शुरू की। काशीनाथ पंत लेले ने उन्हें अपनी पाठशाला में बीस रुपये मासिक वेतन पर शिक्षक बना लिया। परन्तु दुर्भाग्य से पाँच-छह महीने में ही यह स्कूल बंद हो गया। इसके बाद देवास के युवराज खासे साहब को पढ़ाने के लिग भास्करजी की नियुक्ति की गई। अनुभव न होते हुए भी भास्करजी ने यह कार्य आत्मविश्वास के बल पर स्वीकार किया। बड़ी कुशलता से छह वर्ष के युवराज को विश्वास में लेकर, स्नेह तथा खेलकूद का आत्मीय वातावरण बनाकर उन्होने शिक्षण-कार्य शुरू किया। बच्चे की स्वाभाविक जिज्ञासाओं का समाधान करते हुए उसे शिक्षा की ओर अग्रसर करने के लिए मनोरंजक ऐतिहासिक कथाएँ सुनाईं। "चिव चिव चिमणी छतात' (चूं चूं चिड़िया छत पे) जैसी कविताएँ बनाईं। खासे-साहब का पढ़ने का कमरा चित्रों तथा नक्शों से भरा रहता। भास्करजी ने अपना कर्त्तव्य बड़ी सफलता से निभाया। सन् 1901 के आसपास खासेसाहब इन्दौर के डेली कॉलेज में पढ़ने गए तब भास्कर जी भी उनके साथ इन्दौर गये। परन्तु अलग से निजी शिक्षक की अब आवश्यकता नहीं थी, अतः वे जल्दी ही देवास लौट आये।

देवास के राजा मल्हारराव ने भास्करजी को निजी मुंशी (मुनीम) की

नौकरी पर बुलाया। यह कार्य बड़ी मेहनत और परेशानी का था। परन्तु महाराजा का पूर्ण विश्वास अर्जित कर वे इस कार्य में यशस्वी हुए। सन् 1903 के लगभग उन्हें इन्दौर के पोलिटिकल एजेंट मि. जार्डीन ने देवास का वकील नियुक्त किया। इस पद पर वे क़रीब पाँच-छह वर्षों तक रहे। इन वर्षों में कुछ शांति एवं स्थिरता मिलने के कारण उनके साहित्यिक अध्ययन को गति मिली। सन् 1908 में देवास के राजा को पूर्ण अधिकार प्राप्त हुए और वहाँ वकील की आवश्यकता नहीं रही। इसी समय गुदरखेडा मे कुछ राजनीतिक प्रश्न उपस्थित हो गये थे, जिन्हे सुलझाने के लिए ही सन् 1909 से गुदरखेड़ा में उनकी नियुक्ति की गई। दो ही वर्षो के अन्दर यह कार्य अत्यत कुशलतापूर्वक सम्पन्न कर वे इससे मुक्त हो गये।

सन् 1911 में पिपलोदा के राजा ने भास्करजी को अपना दीवान बनाया। उन्होंने राज्य के आंतरिक झगड़ों को निबटाकर प्रशासन का कार्य सही रास्ते पर लाया, राज्य को लाभान्वित किया। साथ ही, राज्य में अनेक सुधार भी किये। एक निस्पृह निडर तथा स्पष्टवादी अधिकारी के रूप में यश कमाया। राजा ने प्रसन्न होकर उन्हें एक सम्मान-पत्र तथा इनाम दिया। राजदरबार में उन्हें सलामी दी जाए, ऐसा आज्ञापत्र भी निकाला गया।

सन् 1914 में भास्करजी इन्दौर लौटे। वहाँ प्रतापगढ़ के जागीरदार का निमंत्रण उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। वहाँ उन्होंने पहले कुछ दिन पुलिस अधीक्षक के रूप में तथा बाद में न्यायाधीश के पद पर कार्य किया। बाद में न्यायालय में राजदरबार का हस्तक्षेप होता देख उन्होंने इस पद से त्यागपत्र दे दिया। सन् 1920 के आसपास लोकमान्य तिलक से प्रेरणा पाकर भास्करजी राष्ट्रीय संस्थाओं मे नौकरी करने के उद्देश्य से पुणे आये। परन्तु वहाँ की अनियमितता एवं अस्थिरता देखकर वे वापस लौट गये। इस संदर्भ मे वे कहते है, "कितनी ही बार मेरे मित्रो ने मुझे सलाह दी कि दरबार की नौकरी छोड़कर, दैवी कृपा से प्राप्त अपनी योग्यता एवं शक्ति का उपयोग करके मैं बेहतर जीवन मे पदार्पण करूँ। परन्तु अफ़सोस ! मुझमें यह कर सकने की शक्ति नहीं है, आत्म-बलिदान की वृत्ति नही है।"

भास्करजी के कार्य-मुक्त होने की बात पता लगते ही खासेसाहब ने माधवराव राजा द्वारा सदेश भिजवाकर अजमेर के सरदार के पुत्रो के शिक्षक के रूप में भास्करजी को नियुक्त किया। अजमेर में वे दो वर्ष रहे। भास्करजी की आयु इस समय पचास के पास थी और इसी समय (1920 के आसपास) प्राध्यापक मायदेव ने उनका पहला काव्य-सग्रह प्रकाशित किया। इस समय तक महाराष्ट्र में उनके काव्य को पसंद करने वाला रसिकवर्ग तैयार हो चुका था।

सन् 1923 से 1926 के बीच भास्करजी ने एक अधीक्षक के रूप में कार्य किया। 1926 से 1937 तक उन्होंने ग्वालियर स्टेट के शिक्षा कार्यालय में परीक्षा-प्रमुख का कार्यभार सँभाला। 1937 में वे सेवानिवृत्त हुए। इस काल में उनकी कविता फूली-फली। सेवानिवृत्त होने पर भी उनकी गृहस्थी की ज़िम्मेदारियाँ समाप्त नहीं हो पायी थीं। कोई पेंशन भी न थी। तभी ग्वालियर दरबार से उन्हें राजकवि की उपाधि मिली तथा मासिक सौ रुपये वेतन की नौकरी मिल गयी।

भास्करजी का अपने आजीविका से सम्बन्धित जीवन-काल में राजघरानों तथा रियासतों से निरंतर संबंध बना रहा। चालीस वर्षों तक लगातार इस प्रकार की नौकरी करते रहना बड़ा कठिन कार्य था। लेकिन अपना कार्य वे हमेशा ही बड़ी निपुणता से करते थे। हाथों में लिया हुआ प्रत्येक कार्य वे अच्छी तरह समझकर, मन लगाकर, कुशलता से पूर्ण करते थे। कभी उन्होंने अपना अपमान होने का मौका नहीं आने दिया। साथ ही, स्वाभिमान क़ायम रखकर सत्य के लिए वे हमेशा निस्पृहता से लड़ते रहे। कभी-कभी नौकरी छोड़कर भी चले आये। परन्तु इन्हीं खूबियों के कारण वे राजा तथा युवराज को उपदेश देने का अधिकार भी पा सके।

**स्वभाव तथा व्यक्तित्व :**

भास्करजी स्वभाव से ही श्रद्धालु तथा आस्तिक थे। मित्रों के बीच उनका मन रमता था। कविता तथा काव्यवाचन उन्हें अत्यत प्रिय थे और इसमें वे तल्लीन हो जाते थे।

पैंतीस वर्ष के भास्कर तांबे का वर्णन करते हुए श्री वि. द. घाटे कहते हैं ;

> तांबे जी का व्यक्तित्व निराला था। वे आत्मकेन्द्रित तथा आत्मतृप्त थे। वे अपने ही काव्य की धुन में रहते थे। उनका शरीर इकहरा और बहुत दुबला-पतला था। अजीब गीली-सी धँसी हुई सी आँखें, आगे को उठती सी भँवे और ऊपर की तरफ़ उभरी हुई नाक। बीच में चौड़ी, बाहर की ओर निकली पतली-मूँछे। आँखें धँसी हुई थीं, लेकिन उनमें बड़ी चमक थी। अव्यवस्थित और ढीला-ढाला पहनावा। बद कालर का कोट, ढीला-सा पैजामा और सिर पर चौकोनी छापे का रुमाल।"
>
> [दिवस असे होते (वे दिन ऐसे थे) पृ० 84]

पचास वर्ष की आयु के भास्करजी का वर्णन करते हुए प्राध्यापक भ. श्री पडित लिखते हैं :

'ढलती हुई उम्र मे, महाकाल नजदीक होते हुए भी उनके चेहरे पर झुरियाँ नही थीं। असली दांतों का स्थान नक़ली दाँतों ने नहीं लिया था। शरीर पर शिथिलता की छाया नहीं थी। घर में उनके (भास्करजी के) सिर पर नाव के आकार की ढीली-सी टोपी विराजमान होती थी। शरीर को हिलने-डुलने में कोई बाधा न हो, ऐसा ढीला-ढाला कुर्ता और हवा न काटे, इसलिए वे कुर्ते पर काली ऊनी बंडी पहने रहते थे। लम्बा सा क़द दुबला-पतला और रंग साँवला। घर से बाहर जाना हो तो उनका पहनावा दरबारी शानो-शौक़त भरा होता था। सिर पर रंगीन साफ़ा, शरीर पर शेरवानी, चूड़ीदार पैंजामा, और पैरों में दिल्ली की बनी जूतियाँ।"

[तांबे आणि त्यांचे गीतिकाव्य (तांबे और उनके गीतिकाव्य) पृ. 29]

तांबे जी सदा ही आशावादी तथा प्रसन्न रहते थे। मित्रों की बैठक में एक बार वे काव्य चर्चा में तल्लीन हो जाते थे तो उन्हें समय का ध्यान ही नहीं रहता था। बोलते-बोलते वे कविता की पक्तियाँ गाने लगते थे। परन्तु इस काव्य गायन अनुरूप उन्होंने स्वर नहीं पाया था। श्री वि. द. घाटे ने लिखा है, 'रूखी आवाज़ वाला इतना अच्छा कवि उन्होंने और कही नहीं देखा। टकटकी लगाकर देखने की, अपने आप को भूलकर हाव-भाव करने की उनकी आदत, बीच में कभी-कभार अंग्रेज़ी का प्रयोग करते हुए चलने वाला उनका काव्य-गायन बड़ा ही प्रभावशाली होता था। अपने विचार प्रगट करते समय उन्हें अंग्रेजी भाषा अधिक आसान लगती थी। डा. माधवराव पटवर्धन ने इस काव्य गायन के विषय में लिखा है—'हमारे कान तृप्त होकर भी अतृप्त रह जाते थे।'

[तांबे : एक अध्ययन, पृ० 17]

**मान सम्मान :**

भास्करजी की कविताएँ उन्हें बताए बिना ही प्रकाशित कर दी गई थीं। उस कविता एवं कवि को ढूंढ़ते हुए प्राध्यापक वा. गो. मायदेव प्रतापगढ़ पहुंचे। उन्होंने भास्करजी की कविताएँ अनेक बार सुनीं, जो सारे महाराष्ट्र में अब बड़ी लोकप्रिय कीं। बड़े परिश्रम के साथ इन कविताओं को उनकी जन्म-गाथा एवं इतिहास सहित संपादित किया। इसे तांबे जी का बड़ा सौभाग्य ही समझना चाहिये। नवम्बर सन् 1920 में प्राध्यापक मायदेव ने तांबे जी की कविताओं का पहला खंड प्रकाशित किया।

नवम्बर सन् 1926 में भास्करजी को इन्दौर में हुए मध्यभारती मराठी कवि सम्मेलन का अध्यक्ष बनाया गया। इन्दौर का शानदार एडवर्ड हॉल (अब महात्मा गाँधी सभागार) भास्करजी के काव्य गायन से गूंज उठा। यहाँ उन्होंने अपने काव्य-संबधी विचार श्रोताओ के सामने रखे। सन् 1927 में श्री दि. गं.

केलकर 'अज्ञातवासी' ने बड़े स्नेह से तांबे जी की कविताओं का दूसरा खंड प्रकाशित किया। पुस्तक रूप में भास्करजी के काव्य जीवन का 'सुवर्ण' महाराष्ट्र को मिला।

भास्करजी ने सन् 1932 में कोल्हापुर के महाराष्ट्र साहित्य सम्मेलन द्वारा आयोजित कवि सम्मेलन का अध्यक्षपद विभूषित किया। सारे मध्य भारत तथा महाराष्ट्र मे उनका इकसठवाँ जन्म दिवस बड़े उत्साह तथा प्रेम से मनाया गया। इसी अवसर पर ग्वालियर के 'तांबे जन्मदिवस मंडल' ने 'तांबे-व्यक्ति आणि कला' नामक गौरवग्रंथ प्रकाशित किया। भास्करजी से चर्चा करके माधवराव पटवर्धन ने उनकी कविताओं का अधिकृत संपादन किया। ग्वालियर नरेश ने उन्हें अपने दरबार का राजकवि बनाकर गौरवान्वित किया।

भास्करजी निष्काम बुद्धि से सरस्वती की अर्चना करते रहे। उनकी कविताओं ने स्वयं उनकी प्रसिद्धि के मार्ग खोले। उनके जीवन काल में ही मराठी के चार सुप्रसिद्ध कवियों ने उनकी कविताओं का संपादन किया। कीर्ति स्वयं उन्हें ढूंढती हुई महाराष्ट्र से बाहर उनके चरणों में आ पहुँची और तब उन्हें 'गुणलुब्धा; स्वयमेव सम्पदा' का अनुभव हुआ।

**पूर्णाहुति :**

सन् 1921 मे विषम ज्वर हो जाने से भास्करजी का स्वास्थ्य बिगड़ गया था। तब से ही जीवन के अगले बीस वर्षो तक वे सतत् मृत्यु के बारे में सोचते रहे। मृत्यु का आगमन कैसा होगा, इस विषय के अनेक कल्पना-चित्र वे मन में खींचते रहे। परन्तु वास्तव में जब उनका अंतिम समय आया तब वे बिल्कुल शांत थे। भास्करजी के जीवन के अंतिम दिनों के विषय में उनके बड़े पुत्र श्री मधुभैया कहते हैं—

> 'वे लगभग छः महीने से बीमार थे···खाँसी के कारण उन्होंने बीड़ी-सिगरेट पीना तो छोड़ ही दिया था। बाद में पान-तम्बाकू खाना भी बड़े संयम के साथ छोड़ दिया। उनका शरीर अब धीरे-धीरे जीर्ण होता जा रहा था। 6 दिसम्बर, 1941 को सुबह···आठ बजे उन्होने मुझे बुलाया और डा. पुस्तके को बुलाने के लिए कहा। उन्हें काफ़ी सर्दी लग रही थी···वे बोले 'Dear Madhu, I shall quietly pass away to-night' (प्रिय मधु, आज मैं शांति से चला जाऊँगा)···रात्रि मे बारह बजे उन्होने मुझे जगाया। वे बोले 'अब डा० पुस्तके को बुलाने की आवश्यकता नही। बेबी (पुत्री) कहाँ है ?' मैंने उन्हें गर्म कॉफी पिलाकर अच्छी तरह चादर ओढ़ायी और शात लेटे रहने को कहा और बेबी को बुलाकर उनके सामने खड़ा किया। 'इसे इतनी सर्दी में क्यों लाये ?' इतना

कहकर वे आँखें बंद करके चुपचाप लेट गये । थोड़ी ही देर में उन्होंने जरा-सी आँखे खोलीं और बोले 'अरे, दीया मंद हो चला है, अब बुझने ही वाला है'···फिर उनके मुँह से कफ़ निकला और वे शांतिपूर्वक लेट गये। ···इसी समय प्रभाकर डा. खांडेकर को लेकर आया। डॉक्टर ने देखा और कहा सब समाप्त हो गया। उस समय एक बजकर पचपन मिनट हुए थे।"

सुबह निशिकांत कालगावकर द्वारा चावपूर्ण स्वरों में 'जीवनाध्वरि पडे आज पूर्णाहुति' (जीवन के यज्ञ में आज पूर्णाहुति) गीत गाये जाने के पश्चात् कवि भास्कर राव तांबे की देह अग्नि को सौंप दी गयी।

# 2

# काव्य, कला एवं मनीषा

आधुनिक मराठी कवियों में तांबे जी कुछ विशिष्ट प्रकृति के कवि हैं। आधुनिक मराठी कविता इहनिष्ठा से परिपूर्ण, साधारण विषयों मे भी नये अर्थ ढूंढने वाली कविता है। वह यथार्थ में रहकर समाज और सामाजिक जीवन का चित्र खीचने मे समर्थ है। वह सृष्टि के रहस्यो के उत्तर ढूंढना चाहती है। कवि केशवसुत, गोविदाग्रज, बालकवि और रविकिरण मंडल द्वारा विकास पाकर आगे बढ़ती हुई मराठी कविता में तांबे जी का अपना एक विशिष्ट स्थान है। तांबे जी के व्यक्तित्व तथा हृदय की बनावट एक अलग परन्तु भारतीय सस्कृति के साँचे मे ढलकर बनी थी। आधुनिक शिक्षा-पद्धति के अनुसार उन्होंने अंग्रेजी की भी शिक्षा प्राप्त की थी। परन्तु उन पर संस्कृत तथा सतों के साहित्य के ही संस्कार पडे थे।

प्रकृति के रहस्य जानने के लिए उत्सुक कलाकार की दृष्टि लेकर भास्कर जी दर्शन की ओर मुड़े। उनका कवि हृदय उनके दर्शन को सौदर्य दृष्टि से समृद्ध करता रहा, और उनकी दार्शनिक बुद्धि उनके कवि हृदय को संसार तथा जीवन की ओर देखने की मनीषा प्रदान करती रही होगी। व्यास, वाल्मीकि, बाण, भवभूति, कालिदास और शेक्सपीयर इत्यादि की विराट तथा परिपक्व काव्य प्रतिमा के साथ-साथ भारतीय आध्यात्मिक ज्ञान तथा दर्शन और इमर्सन जैसे पाश्चात्य दार्शनिकों का प्रभाव भी भास्कर जी पर पड़ा।

उनके विचारों को उपनिषदों के दर्शन का आधार मिला है। उन्हें सांतत्व (जिसका अंत हो सकता हो ऐसा तत्त्व) में अनंतत्व दिखाई देता है, उसका अनुभव होता है। संपूर्ण विश्व का मूल एक-अक्षर-तत्त्व है ऐसा उनका विश्वास है। वे कहते है कि 'सूत्रे मणिगणाइव' के न्याय से आज, कल यत्र तत्र सर्वत्र

यही एक शक्ति सचार कर रही है। भास्करजी इस अक्षर शक्ति को आईडियल' अथवा काल्पनिक (आदर्श); और विश्व के अगणित नामरूपों को रीयल अथवा यथार्थ कहते है। इन्हीं को 'अनंत' तथा 'सान्त' भी कह सकते हैं। मनुष्य इस सृष्टि का एक अंश है और बाह्य-सृष्टि मनुष्य के अंतर्मन का ही विस्तृत चित्र है; या मनुष्य का अंतर्मन ही बाह्य सृष्टि का सूक्ष्म चित्र है। अर्थात् पिंड ही ब्रह्मांड है।'

सृष्टि तथा मानव का तादात्म्य कैसे होता है अथवा कैसे हो सकता है इसका सूक्ष्म विचार करते हुए वे कहते है कि इस अनित्य, सान्त एवं द्वंद्वात्मक विश्व का अनुभव लेते-लेते ही कवि को नित्य, अनंत एवं द्वद्वातीत विश्व की ओर जाना होता है। ये द्वंद्व ही यथार्थ के घटकावयव एव अर्जित ज्ञान के प्रणव हैं। प्रथम दर्शन में विरोधाभास का निर्माण करने वाले इस द्वंद्व द्वारा ही कवि को मुक्ति प्राप्त करनी पड़ती है; वास्तविकता के बंधन से मुक्त होना पड़ता है।

सौंदर्य की ओर सहज आकर्षित होने वाला मानव-हृदय मार्ग मे आनेवाली कुरूपताओं से डर जाता है। परन्तु परमानद के रास्ते में आनेवाली इन बाधाओं पर विजय पाकर वह विश्व के विभूतिमय तथा सुन्दर तत्त्व की ओर जाने लगता है।

**'इस पार' और 'उस पार' :**

भास्करजी ने 'महाश्वेतेचे निवास स्थान अथवा कवितेचे मूळ' शीर्षक से लिखे गये अपने लेख के अनुषग मे 'इस पार' और 'उस पार' की एक परिकल्पना प्रस्तुत की है। 'इस पार' की परिकल्पना दृश्य बाह्य सृष्टि को दर्शाने वाली, अशाश्वत, वास्तव, द्वंद्वमय विश्व के संदर्भ में, तो 'उस पार' की परिकल्पना अदृश्य, शाश्वत, द्वद्वातीत विश्व के संदर्भ में प्रयुक्त की गयी है। 'इस पार' सभी कुछ द्वद्व से उत्पन्न हुआ है, और 'उस पार' सभी कुछ पूर्णत्व को प्राप्त है। अर्थात् 'उस पार' सपूर्ण सत्, चित् तथा आनन्द है। पूर्णत्व का अनुभव लेने के लिए कवि टेनिसन के कथनानुसार पर्दे के पीछे देखना होगा। दिक्काल के आरपार दृष्टि पहुँचानी होगी। यह कल्पनीय ही सत् चित् आनंद का स्वरूप है। व्यक्तिरूप में देखा जाए तो वही अस्ति भाति प्रिय है। इस परिकल्पना को समझते समय भास्करजी स्पष्ट करते हैं कि दृश्य जगत् ही आनंदस्वरूप है। चिद्विलासवादी तत्त्वज्ञान को स्पष्ट करते समय संत ज्ञानेश्वर की तरह भास्करजी कहते है :

> 'दृश्य जगत् को मैं आनंद की ही अभिव्यक्ति मानता हूँ···दुख उसके लिए अप्रासंगिक है। जीव की संकुचित परिसीमा ही दुख अथवा

वेदना उत्पन्न करती है। अतः दुख हमारा अपना बनाया हुआ है। वास्तव में उसका विश्व की रचना में कोई स्थान नहीं है। वह केवल वस्तु की छाया में है, वस्तु में नही ! और उस छाया में भी आनंद सतत अपने को प्रगट करने के लिए प्रयत्नशील है । इस दृश्य जगत की मूल प्रक्रिया—इस लक्षणीय शरीर की गति ही हमें विश्वास दिलाती है कि जीवन अनश्वर है; मृत्यु, दुख, वेदना अशाश्वत है, क्षणभंगुर हैं; और यद्यपि ऐसा आभास होता है कि वे हम पर छा जाते हैं, वास्तव मे वे हमे एक बेहतर अस्तित्व की ओर ले जाते हैं।"

[**श्री मायदेव को लिखित पत्र,** दि. 11-11-1920]

जीवन विषयक इन विचारों के, पीछे 'आनदमय पूर्णजगत' कल्पना की पार्श्वभूमि है

"ॐ पूर्णमिदः पूर्णमिद पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ।।"

बृहदारण्यकोपनिषद् की इस महान परिकल्पना के अनुसार जगत जैसा पूर्ण है, वैसा ही उसमें वास करने वाला आनंद भी पूर्ण है। संसार से दुख रूपी क्षणभंगुर छाया को हटाते ही मूलतः आनदमय चिद्विलासी पूर्ण जगत् का साक्षात्कार होता है। भास्करजी की जीवन की ओर देखने की दृष्टि आनंदमयी है।

**कला एवं ललितकलाओं की मीमांसा :**

ललित कलाओं का जन्म भाषा से पहले हुआ, यह बात भास्करजी बड़ी श्रद्धा के साथ कहते है। जब भाषा नहीं थी, भावनाएँ तब भी थीं। इन भावनाओं को व्यक्त करने के लिए मानव, सृष्टि का आधार लेता रहा होगा। भास्करजी इस गूढ़ संवाद को ही कला का बीज मानते है क्योंकि निसर्ग के सान्निध्य से हुए इस गूढ़ संवाद द्वारा ही मानव हृदय में रचना अथवा निर्माण का विचार उत्पन्न हुआ होगा। इस प्रकार कला ही सृष्टि की पुकार को मानव द्वारा दिया गया प्रत्युत्तर है।

मनुष्य की बुद्धि का विकास होने से पूर्व ही कला का जन्म हुआ था यह मान लेने के पश्चात् भास्करजी हृदय में उत्पन्न होनेवाले प्रश्नों तथा उत्तरों का शोध करने का प्रयत्न करते है। कला तथा नीति के आपसी संबंध के विषय मे विचार करते समय भास्करजी कहते हैं कि समाज की सुव्यवस्थित उत्पत्ति होकर धर्म-अधर्म, विधि-निषेध तथा अन्य बन्धन तथा पाप-पुण्य की कल्पना आदि के उत्पन्न होने से पहले ही कला की उत्पत्ति हो चुकी थी, यह भूलना नहीं

चाहिए। वे समझते हैं कि सत्य-असत्य या तत्त्वज्ञान और कला के आपसी संबंधों के बारे में विचार करना आवश्यक है। साथ ही, कला का उद्देश्य क्या है, इस विषय पर विचार करते समय भी याद रखना होगा कि कला मानव द्वारा प्रकृति को दिया गया उत्तर है। कला के लिए जीवन या जीवन के लिए कला ? इस प्रश्न पर विचार करते समय, कला मनुष्य की मूलभूत भावनाओं का दुर्दमनीय उद्गार है, अभिव्यक्ति है—इसकी ओर वे ध्यान आकर्षित करते है। इन सब बातों की चर्चा वे अपने कला सम्बन्धी विचारों में करते हैं।

प्रकृति के अनेक रूप कला का आधार हो सकते हैं। परन्तु वे केवल सृष्टि मे घटित घटनाएँ हैं। मानवी कलाकृतियाँ सृष्टि की प्राकृतिक घटनाएँ न होकर मानव हृदय द्वारा निर्मित रचनाएँ हैं। भास्करजी कहते हैं—कला के कलश का निर्माण अत्यत दैदीप्यमान, उज्ज्वल, सत्यस्वरूप हीरे द्वारा; अत्यंत निर्मल, अत्यंत मंगलमय, पुण्यमय नीतिरूपी पन्ने द्वारा; मनोहर, आह्लाददायक, सारे विश्व के मूल्यवान एवं रूपवान माणिकों द्वारा किया गया है। वे स्पष्ट करते हैं कि सारे संसार की कोई भी नीति-कल्पना उस पवित्रता, उस मांगल्य की बराबरी नही कर सकती।

मानवी स्फूर्ति से जब कला की निर्मिति हुई तब वहाँ नीति-अनीति, सत्य-असत्य इत्यादि जैसे प्रश्न उत्पन्न नही हुए। मानव हृदय में उत्पन्न होने वाले नये-नये प्रश्न, उसके दु.ख-सुख उसकी कला में सहज ही प्रतिबिंबित होते है। कला मानव मन का आविष्कार है। आविष्कार कला का उपयोग अथवा कार्य नही, वह उसका हेतु भी नहीं! कला के पार्श्व का मानवी हृदय चिन्तनीय है। कला के जन्म के समय भी यही हृदय था और आज भी वैसा ही है। समयानुसार मानवी संस्कारों के अनुरूप, मानव मन के नीति-नियमों आदि का चित्रण कला द्वारा होता है। भास्करजी के विचार में यह चित्रण मनुष्य हृदय की प्रगति तथा काल के साथ बदलता है और बदलता रहेगा।

जिन दिनों ललित कलाओं के उदय से सबंधित अनुकरणमूलक सिद्धांत 'इमिटेशन थियरी' के संदर्भ मे वाद-विवाद चल रहे थे तब भास्करजी ने भी इस विषय पर अपने विचार प्रस्तुत किये। अनुकरणप्रियता मानव की स्वाभाविक प्रवृत्ति है इसलिए मनुष्य प्रकृति की नक़ल करता है। नैसर्गि वस्तुओं के चित्रण मे मनुष्य स्वय भी एक महत्त्वपूर्ण घटक होता है। मानव स्वभाव का चित्रण दो ही प्रकार से करना संभव है—यथार्थवादी अर्थात् जैसा मनुष्य है वैसा, और अयथार्थवादी अर्थात् जैसा है, उससे अच्छा अथवा उससे बुरा। इस संदर्भ में विचार करके भास्करजी अपने विचार सामने रखते हुए कहते है कि 'ललित कलाओं का विषय केवल सृष्टि की वस्तुएँ ही नही हैं, अपितु उनमें निहित सौंदर्य, भव्यता जैसे गुणों की प्रतिकृति बनाना है।' सृष्टि तथा कला

का आपस में बड़ा घनिष्ठ संबंध है, यह बताते समय वे इस मत के प्रति शका व्यक्त करते हैं कि कला सृष्टि की सुंदरता तथा भव्यता की नक़ल करती है अत: ललितकलाकोविद सृष्टि की नकलनवीस है। वे प्रश्न करते हैं—

> 'संगीत-कला के मालकौस अथवा हिंदोल राग···सृष्टि की कौन-सी वस्तु की नक़ल हैं?···समुद्र मे भयकर तूफान उत्पन्न करनेवाला, मिले हुओं को अलग करनेवाला और बिछड़े हुओं को मिलानेवाला 'टेम्पेस्ट' का 'एरियल', अथवा 'मिड समर नाइट्स ड्रीम' का 'पक'··· 'रोमियो एण्ड जूलियट' की 'जूलियट' या 'ऑथेलो' की 'डेसडिमोना' जैसे शेक्सपीयर द्वारा निर्मित स्त्री-पुरुष सृष्टि के कौन-से वास्तविक स्त्री-पुरुषों की अनुकृति है?'
>
> [तांबे : व्यक्ती आणि कला, पृ० 2-65-66]

इस प्रकार के वाक्यो द्वारा भास्करजी दर्शाना चाहते है कि अनुकरणमूलक सिद्धांत मे कोई अर्थ नहीं है। प्रकृति की वस्तुओ का निरीक्षण करके मनुष्य को अपनी प्रतिसृष्टि बनाने की स्फूर्ति प्राप्त होती है, प्रेरणा मिलती है, अंतत: यही एक महत्त्वपूर्ण बात रह जाती है। प्रत्येक कलाकृति मे कलाकार का अंश समाया होता हैं। कोई भी कलाकृति उसके निर्माता के बिना सभव नही, यह स्पष्ट करते समय भास्करजी को कवि केशवसुत की कविता की एक पक्ति याद आती है : 'आम्हाला वगळ गतप्रभ क्षणी होतील तारांगणे' अर्थात् 'बिना हमारे, सारे तारे हो जाएँगे आभाहीन क्षण में !"

'वास्तविकता कभी भी ललित कलाओ की बराबरी नहीं कर सकती'—यह संस्कृत कवि मम्मट का विचार भी भास्करजी इस सदर्भ में प्रस्तुत करते हैं—

> "नियति कृतनियमरहिताम् ल्हादैकमनीयनन्य परतंत्राम् ।
> नवरस रुचिरां निर्मित-मा दधती भारती कवेर्जयति ।।"

(नवरस रुचिरा का निर्माण करनेवाले, प्रतिसृष्टि के जनक कवि की प्रतिभा की मैं जयजयकार करता हूँ।)

यथार्थ अशाश्वत तथा परिवर्तनशील है। परन्तु उससे प्रेरणा पाकर बनायी गयी ललित कलाकृति शाश्वत तथा चिरकालीन है। यथार्थ जिस अत:सत्त्व से बना है, वह विभाज्य में अविभाज्य, अनेकों के बीच एक, अशाश्वत में शाश्वत तथा सान्त होकर भी, अनत है। इस एकतत्त्वीय पदार्थ को काट ने 'ding-a sich, (the thing in itself) और भारतीय साहित्य दर्शनशास्त्र ने 'रसौ वै स:' कहा है। केवल यथार्थवाद को माननेवाले ललित कलाओं की उपपत्ति को अनुकृति मात्र समझते है। परन्तु कल्पना मे विश्वास रखनेवाले जानते हैं

कि ललित कलाओं के लिए पदार्थ एवं पदार्थ सत्त्व दोनों का ही आधार आवश्यक होता है। सृष्टि की वस्तु जैसे ही कलाकार के हृदय में प्रवेश करती है, वैसे ही भावनाओं की भट्टी से निःसृत सत्यस्वरूप रस उसमें जा मिलता है। इसी से फिर कलाकार की प्रतिसृष्टि का निर्माण होता है। यथार्थ तथा कल्पना दोनों का मिलन ललितकलाओं में प्रगट होता है। ललितकलाओं में बाह्य सौंदर्य की अपेक्षा कलाकार के हृदय के आतरिक सौंदर्य को अधिक महत्त्व प्राप्त है। कलाकार के व्यक्तित्व को प्रगट करनेवाली कलाकृति 'ब्रह्मानंद सहोदर' का-सा अलौकिक आनद देती है।

यह सौंदर्यानंद चिरस्थायी एवं पवित्र, निःस्वार्थ तथा निष्काम, साथ ही, सर्वव्यापी होता है। अपने इस तर्क को स्पष्ट करने के लिए भास्करजी 'ओलेती' का उदाहरण देते है। कलाकार की अतर्दृष्टि यथार्थ से परे, अंतिम सत्य, सदाचार, सपूर्ण आनंद तक पहुँचती है, और रसिको के हृदय से केवल प्रशंसोद्गार ही निकलते है। कलाकृति सृष्टि की प्रतिकृति नही अपितु उसकी प्रतिसृष्टि है। यद्यपि कला का निर्माण यथार्थ की प्रेरणा से होता है फिर भी वह यथार्थ की अनुकृति नही है। कलाकार के व्यक्तित्व में पूर्णत्व 'सब्जेक्टिव परफेक्शन— (Subjective Perfection)—होने के कारण वह उसके अंतर्गत स्वसंवेदनापूर्ण कल्पनारम्य पूर्णत्व की ओर उड़ान भरता है। ऐसी बात नहीं कि इस समय वह यथार्थ से दूर हो जाता है। वह तो यथार्थ के लिए एक अलौकिक, अश्रुतपूर्व सहचर का निर्माण करता है। कला का यह कार्य अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। कला प्रकृति की परिपूरक है। वह उसको परिवर्तित करती है। वह स्वयं सृष्टि है। कला का धर्म अथवा उद्देश्य समझ में आ जाने पर सृष्टि की अनुकृति और सच्ची कला के बीच का अंतर स्पष्ट हो जाता है। एक केवल 'यथार्थ की प्रतिकृति' 'Realistic Imitation' है तो दूसरी कल्पनाजनित प्रतिसृष्टि 'Idealistic Recreation' है। सच्ची कला का जन्म हृदय के सर्वोत्कृष्ट एवं पुण्यसंचित आनंद से होता है और वह सभी पर आनंद की वर्षा करती है। वह आबाल-वृद्धों का उद्बोधन एवं उन्नयन करती है। कल्पनामय पूर्ण विश्व और मूर्त प्रत्यक्ष विश्व भिन्न-भिन्न अस्तित्व रखते है परन्तु उनका संबंध शरीर एवं आत्मा के संबंध के समान घनिष्ठ होता है।

भास्करजी जानते है कि मनुष्य का सारा ज्ञान द्वंद्वमूलक तथा सापेक्ष है। सान्त मे ही अनंत भी है। विश्व की विषमयाओं, भिन्नताओं का मूल एकता में ही है। पूर्णत्व की दृष्टि से देखनेवाले कलाकार के हृदय में सृष्टि की नामरूपी न्यूनताएँ तथा क्षुद्रताएँ लुप्त हो जाती हैं। वास्तविक जग जैसा होना चाहिए वैसा नहीं है, इसका अनुभव पाकर वह उसके भीतरी छिपे सत्त्व की ओर बढ़ता है। तब उसे 'प्रत्येक वस्तु में मैं स्वयं को देखता हूँ' (I see myself in all I see).

का अनुभव मिलता है। वह पाता है कि वाह्य विश्व ही उसके अंतर्मन के पूर्णत्व का प्रतिबिंब है और उसके अतर्मन का सौदर्य सपूर्ण विश्व के अंतरंग में फैला हुआ है। वह अनजाने में ही सपूर्णता व्यक्त करता रहता है। जैसे ही आनदरूपी आत्मा स्वय को विश्व में देखने लगती है, सारा विश्व आनंदमय दिखाई देने लगता है। फिर इस विश्व के प्रति सहृदयता, आत्मीयता और आनंद भावना उसकी कलाकृति में प्रतिबिंबित होती है। भावनाओं के रंग, छटा और छाया-प्रकाश से सजी यह कलाकृति श्रेष्ठ दर्जे की, रमणीय तथा पूर्णत्व को सूचक होती है। अभिनवगुप्त ने भी कला के इस स्वरूप को रसास्वाद प्रक्रिया का रूप कहा है।

**कला का स्वभावगुण :**

स्वातंत्र्यप्रिय कला का सच्चा रूप उसके स्वैर, बंधनरहित विचरण में दिखाई देता है। इसीलिए कला को कवि मम्मट 'नियतिकृत नियमरहित एवं अनन्य परतंत्र' कहा हैं। कला स्वभाव से ही स्वच्छद वृत्ति की होती है। प्रसग-विशेष में उसे अपने सारे बंधनों का विस्मरण हो जाता है। ऐसे समय 'वाच्यं अर्थोनुधावति' जैसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है। कला एक क्रीड़ा है, स्वातन्त्र्य ही जिसका जीवन है। सत तुकाराम भी कला के स्वभावका 'क्रीड़ा' कहकर उल्लेख करते हैं।[1] वे इसे नीति-अनीति के पाठ पढ़ाना नही कहते। भास्करजी के विचार में, कलाकार की प्रवृत्ति बाह्य जगत् की न्यूनताओं और दुखों को भुला-कर पृथ्वी पर स्वर्ग उतार लाने की ओर होती है। कलाकार की कलाकृति यथार्थ के समान नश्वर नही है; यथार्थ के सूक्ष्म निरीक्षण से कलाकार के हृदय में उठनेवाली भावनाओं तथा विचारों का प्रतिसृष्टि में रूपान्तर है।

कला एक निष्काम साधना है। अपने आप में लीन तथा अंतर्मुखी रसिक इस मनोवस्था में संसार की किसी भी वस्तु से कोई भी अपेक्षा न रखते हुए आनद प्राप्त करता है। ससार की चक्की से उसे कुछ लेना-देना नही। वह एक समाधि की-सी अवस्था में रहता है। ऐसी स्थिति में ही कला का जन्म होता है। हेतुपूर्वक उत्पन्न की गई कला, भास्करजी के विचार से, कला नही है। वे यह भी कहते है कि यद्यपि निष्काम, निर्हेतु कलाकृति का परिणाम सामाजिक अथवा प्रबोधनात्मक होता है, फिर भी वह कला का प्रधान हेतु नही है। सच्ची कला निरपेक्ष एवं उपयुक्ततारहित होती है।

1. 'माइया बापे मज दिधले भातुके। म्हणूनी कौतुके क्रीडा करी।।'
(मेरे पिता ने खिलौने दिये। इसलिए मैं इनसे कौतुक-पूर्वक क्रीडा करता हूँ)
—तुकाराम

**कला का ध्येय :**

जीवन काव्यनिर्मिति का एक साधन है, वह कला का ध्येय नहीं। कला का एकमात्र ध्येय आनंदभक्ति है। अपनी कविता 'कलेचे हृद्गत' में भी भास्करजी अपना यही विचार प्रगट किया है। आँखों के होते हुए संसार का सौंदर्य न देखनेवाले, कानों के होते हुए नाद माधुर्य को न सुननेवाले भाग्यहीन अरसिक को सौदर्य का साक्षात्कार करवाना ही कला का सर्वोत्कृष्ट कार्य है।

"प्रफुल्ल हृदया, अमृतसागरा, माझ्या कविराया।
मंत्रोदकि परिमार्जुनी उघडी कर्णा नयना या॥

[हे प्रफुल्ल हृदय, अमृतसागर, कविराज। अपने मत्रोदक (शब्दो) से परिमार्जित कर मेरे कर्ण नयनों को खोल दे॥]

विश्व के अनगिनत स्थानों पर बिखरे सौंदर्य का साक्षात्कार कराना ही कला अंतिम उद्देश्य है।

**कला का कर्त्तव्य :**

विश्व की द्वंद्व सबंधी समस्याओं को प्रगट करते-करते कला उसमे अद्वैत, एक तत्त्व को ढूँढ़ लेती है। भास्करजी इसी को कला का अंतिम कर्त्तव्य समझते हैं। रस को वे अलौकिक मानते हैं—'वाक्यं रसात्मकं काव्य'। कला सपूर्ण सत्य, नीति, सौंदर्य तथा 'सत्-चित्-आनंद' का परममंगल धाम है यह स्पष्ट करने के लिए 'सौंदर्य ही सत्य है, सत्य ही सौदर्य है' (Beauty is Truth, Truth is beauty) में थोड़ा सा परिवर्तन करते हुए वे कहते हैं, सौंदर्य ही सत्य एवं मगल है, सत्य एवं नीति ही सौंदर्य है' (Beauty is truth and goodness; truth and goodness is beauty)। उदासीनता, दुख, केवल ऊपरी दिखावा है। अंतिम सत्य तो 'आनदादेव खल्विदानिभूतानि जायन्ते' यही है।

**कला एवं नीति का आपसी संबंध :**

भास्करजी के विचारों के अनुसार देश-काल-परिस्थिति के साथ बदलनेवाली परिवर्तनशील, बहुरूपिणी नीति का अवलम्बन करनेवाली शाश्वत कला, नीति का रूप बदलते ही आधार, छूट जाने से नष्ट हो जाएगी। सन् 1930 में मराठी भाषा में कला-नीति-जीवन पर वाद-विवाद जोर पकड़े हुए था। ना. सी. फड़के, वि. स. खांडेकर, आचार्य जावडेकर, वा. म. जोशी, न. चिं. केलकर जैसे सुप्रसिद्ध साहित्यकार इस विषय पर आवेशपूर्वक अपने मत प्रदर्शित कर रहे थे। 'कला आणि नीति' नामक एक छोटी-सी पुस्तिका द्वारा भास्करजी

ने अपने नीतिविषयक विचार लोगों के सामने रखे।

उनके अनुसार भावनाओं को उद्दीप्त करना ही सच्ची नीति शिक्षा है, और यह कार्य कला करती है। वे कहते है कि सच्चरित्र के निर्माण में सहायक सारी शक्तियों को प्रोत्साहित करके परमानद की ओर ले जाने तथा उसे सफल बनाने का जो कार्य कलाकार करता है, वह नीतिशास्त्र के पाठ पढ़ानेवाले शास्त्री-पंडितों की अनेक पीढियाँ मिलकर भी नहीं कर सकती। मनुष्य के हृदय पर पड़ने वाली नीतिविषयक संस्कारों की छाप कला पर दिखाई देने के कारण यह संभ्रम उत्पन्न होने लगता है कि शायद नीति-शिक्षा ही कला का हेतु है। परन्तु वास्तव में नीति एवं कला का स्वभावतः आपस मे रत्ती भर भी सबध नहीं है। कला के राज्य मे नीति का कोई स्थान नही। परन्तु एक आनुषगिक कार्य के रूप में कला द्वारा जो नीतिकार्य हो जाता है, वह नीतिविषयक व्याख्यानों की अपेक्षा अधिक चिरस्थायी होता है। संगीत, नृत्य, शिल्प आदि जैसे कला के रूपों का नीति से नामभात्र का भी सबंध नहीं होता। कला नीति-अनीति के संबंध में उदासीन तथा बेपरवाह होती है।

**काव्यविचार :**

भास्करजी के विचार में 'काव्य मूर्तरूप है अमूर्त नही; उसका सामर्थ्य सृजन में है, चिंतन मे नही, वह समाहरणपरक है; पृथक्करणपरक नही। काव्य कल्पनाओं तथा भावनाओं पर आरूढ होता है; ध्यान या मनन पर नहीं।" उनके मतानुसार कुशल कलाकार को किसी एक भाव का सपूर्ण स्वरूप उसके अतिसूक्ष्म, बल्कि यह कहना चाहिए अमूर्त, ईषत्कृप, तरल, परस्पर संलग्न छायाप्रकाश सहित, कम से कम शब्दों में यथारूप दर्शाना होता है। उस रूप-दर्शन से रसिक हृदय रखनेवाले श्रोता अथवा पाठक के हृदयफलक पर एक वैसा ही चित्र प्रतिबिबित होता है। रसिक इसमें तन्मय हो जाता है और इस समय कोई दूसरा भाव अथवा विचार उसके पास फिर फटक नही पाता। परन्तु इस कोटि के काव्य में भावों की सघनता एवं गहनता की आवश्यकता को भी भास्करजी स्पष्ट करते है। उत्तम कविता सृष्टि के अगाध अनद्यतन सत्त्वमय स्वरूप का चित्र है। चरमोत्कर्ष पर पहुँची हुई भावनाओं के उद्गार ही कविता के रूप में सामने आते हैं। उत्कृष्ट कविता के लिए उच्च, उदात्त मनोवृत्ति आवश्यक होती है।

काव्य की गहनता का अर्थ नीति, तत्त्वज्ञान अथवा साहित्य-दर्शन का प्रदर्शन नहीं है यह स्पष्ट करते समय भास्करजी कहते हैं कि काव्य के भावों की गहनता का अर्थ है भावनाओ का विकास तथा प्रकर्ष, उनके स्थूल तथा सूक्ष्म कार्यों का चलन, उस समय उत्पन्न होने वाले विभिन्न एवं परस्पर-विरोधी

भावों के मिलन से होने वाले परिणाम का ज्ञान ! इसी को मनुष्य स्वभाव का सपूर्ण ज्ञान भी कह सकते हैं। सृष्टि के मूलतत्त्व से मनुष्य-हृदय का तादात्म्य होकर स्वयंसिद्ध साक्षात्कार द्वारा प्रगट होने वाले ज्ञान को भास्करजी 'सम्यक् ज्ञान' कहकर सबोधित करते है। अकृत्रिम तथा पूर्वाग्रहविहीन होने के कारण वह कविता सत्य, नीति तथा सौंदर्य के सच्चे ज्ञान की खान है। कवि केशवसुत के 'झपुर्झा' के संदर्भ में लिखते समय भास्करजी ने अपने ये विचार स्पष्ट किये थे। वे कहते हैं—

> 'कविता हृदय की कोख से जन्म लेती है। केवल शब्दों की कसरत से कविता में गहनता नही आ जाती। भावनाओं से परिपूर्ण कविता सत्य से ओतप्रोत होती है। परन्तु निसर्ग से अन्तर्बाह्य तादात्म्य साधकर उसका अन्त:स्वरूप देखने के लिए भावो के नेत्रों की आवश्यकता होती है। यही काव्य की गहनता है।'
>
> **[तांबे : व्यक्ती आणि कला, पृ० 2-4]**

**काव्य का प्रयोजन :**

काव्य के प्रयोजन के बारे में पूर्व से लेकर पश्चिम तक विद्वानों ने अपने विचार व्यक्त किये हैं। अपने विचार प्रस्तुत करते समय भास्करजी कहते है—

> 'कवि बिना लिखे रह नहीं सकता। वह इतना उतावला हो जाता है कि पृथ्वी की कोई भी शक्ति उसके आविष्कार पर प्रतिबंध नहीं लगा सकती, उसका मुँह ज़बरन बंद नहीं कर सकती। काव्य रचना एक अपरिहार्य, दुर्दमनीय क्रिया है।"

यह कहकर कि कविता अपने आप लिखी जाती है, भास्करजी उसके भविष्य के बारे में कवि मैथ्यू आर्नल्ड के माननीय विचारो को उद्धृत करते हैं—

> 'कविता का भविष्य अपरिमित है क्योंकि कविता में ही, उज्ज्वल भविष्य की श्रेष्ठ कविता में ही, मानव जाति अपने आश्रय को सुनिश्चित कर पाएगी क्योंकि कविता में विचार ही सबकुछ है। बाक़ी दुनिया एक ईश्वरीय माया है, भ्रम है। कविता में विचार तथा भावनाओ का मेल होता है। विचार ही यथार्थता है। हमारे धर्म का सबसे दृढ़ अवयव उसकी अचेतन कविता है······जीवन को समझने के लिए हमें काव्य का ही आश्रय लेना पड़ता है। कविता के बिना हमारा वैज्ञानिक ज्ञान अधूरा लगेगा। ······वह दिन भी आएगा जब हमे आश्चर्य होगा कि हम उन (धर्म, दर्शन आदि) पर विश्वास करते रहे और उन्हें गभीरता से लेते रहे। और

जितना ही हम उनकी निरर्थकता को समझेंगे उतना ही हम कविता द्वारा प्राप्त उत्कृष्ट निर्मल ज्ञान की महत्ता को समझेंगे ।"

['एस्सेज आन क्रिटिसिज्म' से]

अतः शास्त्र, धर्म, दर्शन ज्ञान, आदि कभी काव्य की बराबरी नहीं कर सकते। अंततः मनुष्य को काव्य से ही संतोष प्राप्त होगा। कविता केवल यही नही दर्शाती की विश्व कैसा है या कैसा था, संसार कैसा होना चाहिए अथवा कैसा हो सकता है यह भी कविता द्वारा बताया जाता है। उसका कर्त्तव्य क्षेत्र भूतकाल अथवा वर्तमानकाल तक मर्यादित न होने से वह 'दिक्कालाद्यनवच्छिन्न' है।

**सान्त-अनंत योग :**

सान्त (यथार्थ) तथा अनंत (कल्पनीय) के मधुर मिलन द्वारा काव्य का निर्माण होता है, काव्य के बारे में यही भास्करजी का सिद्धांत है। विश्व की विविध वस्तुओं के अनेक रूपों के मूल में एक सर्वव्यापी अनंत तत्त्व है। यथार्थ की सहायता से उसका आकलन होता है। यथार्थ द्वन्द्वस्वरूप है; परन्तु कल्पनीय एक तत्त्व संपूर्ण शिव, सौदर्य एवं आनंद का रूप है। इसका आकलन होने के पश्चात् ही काव्य का निर्माण होता है। सृष्टि एवं मानव के गूढ़ संवाद का शब्दो में रूपान्तर ही काव्य है। यथार्थ मे निहित द्वद्व से होकर ही सौदर्य का आकलन करते हुए कवि अनत के निकट जाता है। उसे प्रतिसृष्टि का निर्माण करने की प्रेरणा मिलती है। इंद्रियगोचर सौदर्य से परे यह अमृततत्त्व कल्पना-विश्व के निकटतर है। वहाँ पहुँचने के पश्चात् सच्चे काव्य का निर्माण होता है। भास्करजी का यह विचार उनके तत्त्वज्ञान तथा उसके आधारभूत सिद्धांत उनके भारतीय दर्शनशास्त्र सम्बन्धी ज्ञान के परिचायक है।

भास्करजी कहते है कि कवि एक द्रष्टा है जो भावनाओ पर सवार होकर ज्ञान (यथार्थ) के घेरे से ऊपर उड़ान भरकर अज्ञात प्रदेश में विहार करते हुए ज्ञात एव अज्ञात से बने ब्रह्मांड को अपने अंतः चक्षुओं द्वारा किसी चित्रपट की तरह देखता है। परन्तु इसके लिए भावनाओं के पंख पाना आवश्यक है। अपनी सृजना शक्ति की सहायता और स्वत्व के मिश्रण से कवि इन सबका यथातथ्य चित्र अंकित करता है। प्रतिसृष्टि का निर्माण करता है। वही इस प्रतिसृष्टि का नियता है, शासक है। सृष्टि के अंतर्बाह्य अध्ययन में यदि धर्म-नीतिदर्शन का ज्ञान गर्भित है तो वही ज्ञान इस काव्य निर्मिति में भी होता है। ऐसी प्रक्रिया द्वारा निर्मित कलाकृति आह्लाददायक होती है।

कवि अपनी संवेदना की शक्ति के अनुसार, और अपनी भावना के ज्ञान के कारण, सहृदयता के कारण मानव स्वभाव से तादात्म्य कर पाता है। अपना

एक विशेष व्यक्तित्व निर्माण करता है। द्वंद्वमूल तथा यथार्थ की कैंची से छुटकारा पाकर वह स्वातंत्र्य प्राप्त करता है। विश्व की प्रत्येक वस्तु में निहित सत्त्व का आकलन होता जाता है। इस प्रक्रिया में जैसे-जैसे मनुष्य की अंत:-शक्ति अकुंठित होकर निर्विघ्न गति से चलने लगती है, वैसे-वैसे एक अपूर्व, असीम आनंद की प्राप्ति होती है। इस सदर्भ मे भास्करजी कहते हैं कि बाह्य आनंद के दर्शन से अंतर्मन में होनेवाले आनंद का संवर्द्धन (लंबीकरण) ही कला है।

**काव्य निर्माण की प्रक्रिया :**

सृष्टि में बिखरे हुए शब्द, रस, गंध इत्यादि के कारण यथार्थ में बिखरा हुआ सौंदर्य रूपी आनद, जो कल्पना के विश्व में भी होता है, हमें दृष्टिगोचर होता है। कवि के पास विपुल मात्रा में स्वाभाविक सहृदयता, उत्कृष्ट भावनाएँ तथा कल्पना-शक्ति होने के कारण सृष्टि का यथार्थ सौंदर्य उसके मन को आकर्षित करता है। इससे सहज ही सौंदर्य-अन्वेषण की प्रक्रिया आरंभ होती है। कवि को अंत: सत्त्व का अनुभव मिलते ही उसे असीम, अलौकिक आनंद की प्राप्ति होती है। इसी अवस्था को वर्ड्सवर्थ ने कहा है—'यह प्रकाश जो कभी सागर और धरा पर नहीं दीख पड़ा।' यथार्थ की प्रतिमा को अंत:शक्ति के स्वाधीन कर देने के पश्चात् जो अवस्था आती है, उसमें आँखे देखते हुए भी नहीं देखतीं, कान सुनते हुए भी नहीं सुनते; इस अंतिम, दिव्य विश्व की लय में कालचक्र का घर्र···घर्र स्थिर हो जाता है, उपयुक्तता के संपूर्ण शून्यत्व से जिस परमानंद का ज्ञान होता है, वस्तुत: वही से कविता फूट पड़ती है। इसी एक क्षण में वास्तविक और काल्पनिक मिलकर एक रूप हो जाते है और कविता का जन्म होता है। तांबे के अनुसार काव्य के जन्म की यही कल्पना है। अभीष्ट यथार्थ के भीतर यह वही निहित कल्पनीय तत्त्व है। यथार्थवाद एवं कल्पनावाद दोनो पर चिंतन करने के पश्चात् तांबे ने अपना यह सिद्धांत सामने रखा था।

कल्पना तत्त्व को मम्मट ने 'रस' कहकर संबोधित किया है। 'रस' को एक अलौकिक आनद मानकर ताबे उसका वर्णन करते हुए कहते है कि यह आनंद 'अनिर्वचनीय, अविभाज्य, विगलतवेद्यांतर, आह्लादमय एवं स्वसवेद्य' होता है। यही विशेषण कल्पना के लिए भी उपयुक्त हैं। पूर्वी साहित्यकार इसी कल्पना की ओर निर्देश करते हुए कहते हैं कि रस ही काव्य की आत्मा है।

अभी तक हमने ताबे के काव्य तथा कला विषयक विचारों को देखा। इसके अनुसार यह कहा जा सकता है कि वास्तव अशाश्वत तथा कल्पनीय शाश्वत है। यथार्थ के अंतर्गत आनेवाला कल्पनीय ही काव्य का जीवन है। काव्य मे केवल सौंदर्य तथा आनद अभीष्ट है जो केवल निरपेक्ष भावनाओ से प्राप्य है। अत: उनके विचारो का मर्म यही है कि काव्य मे सौदर्यानुभव होना आवश्यक है।

ताबे जिस कालखंड में अपने ये विचार प्रस्तुत कर रहे थे, वह कालखंड मराठी सृजनात्मक साहित्य तथा साहित्यिक चर्चा एव समीक्षा दोनों ही की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण रहा है। इस अवधि में कला की स्वतत्रता को मान्यता देकर भी कला को उद्बोधन का साधन माना जा रहा था। कला का यह दुहरा प्रयोजन ह. ना. आपटे, कवि केशवसुत, श्री कृष्ण कोल्हटकर जैसे साहित्यकारों के विचारों में स्पष्ट किया गया है। सुप्रसिद्ध लेखक श्री गडकरी का साहित्य सामाजिक प्रबोधन से जुड़ा हुआ है। सन् 1935 के बाद से मार्क्सवादी विचारो का साहित्यिक विचारो पर आक्रमण होने के कारण कला को दो भागो मे विभाजित एव वर्गीकृत किया जाने लगा।

परन्तु इस प्रकार के वातावरण के होते हुए भी तांबे अपने कला विषयक विचारों से विचलित नही हुए। कला के शुद्ध स्वातंत्र्य के विषय में विचार तथा उस विचार की प्रस्तुति इतने नैरंतर्य एवं नि:सकोच भाव से शायद ही किसी और ने की हो। सौदर्य ही कला की आत्मा है; यथार्थ का चित्रण अथवा नीति का विनियोजन करने का सौदर्य के साथ प्रत्यक्ष अथवा अन्य संबंध नहीं होता—यह बात भास्करजी निरपवाद रूप से और बिना किसी शर्त के कहते रहे। इसी सौंदर्य को वे रस कहते है; और उसे अलौकिक, मूल आनंद का अंश मानते हैं।

अर्वाचीन साहित्यिक विचार लौकिक संसार तथा उनके बुद्धिगम्य सत्य-दर्शन से जुड़ा हुआ है। इस प्रकार का सौंदर्य तत्त्व भास्करजी के 'कल्पनीय' (आइडियल) तत्त्व से भिन्न है। आधुनिक रोमाटिक हृदय भी वस्तु मे दर्शनमात्र से पुलकित हो उठता है। उनके वर्णन में कहा गया है—'सौंदर्य की उपस्थिति में थिरकती सवेदना' ('Quivering sensibility in presence of beauty') तांबे सौंदर्य के दर्शन से, उसके सान्निध्य में मूलशक्ति का अनुभव पाकर विस्मय चकित हो जाते है। यही कारण है कि उनकी काव्यानुभूति के सौदर्यवाद (रोमांटिसिज्म) तथा रहस्यवाद (मिस्टिसिज्म) का सम्यक् मिश्रण दिखायी देता हैं। आधुनिक साहित्य के अभिप्राय में वे न तो स्वच्छंदतावादी (रोमांटिक) कवि है और न ही रहस्यवादी (मिस्टिक); वे रोमांटिक-मिस्टिक हैं।

यही कारण है कि तांबे की काव्य-निर्मित निष्काम सरस्वती पूजा है। नवमतवाद संबधी विचार उनके लिए नवीन नही है। वे कहते हैं,

> "स्वय कार्लमार्क्स भी यह बात स्वीकार नहीं कर सके कि एक अनाकलनीय शक्ति इस विश्व का मूल है। उनके इस कथन से कि जीवन के कलह तथा मनुष्य की आर्थिक परिस्थिति उसके व्यवहार तथा स्वभाव का नियमन करते हैं, विश्वात्मा पर कोई परिणाम नही होता।··· (वहाँ भी) जीवनार्थ कलह का मूल तत्त्व कार्य... ...ता ही है।"

यदि हम विश्वात्मा की समदृष्टि से विश्व की ओर देख सके तो सारा संसार मांगल्य, आनंद तथा सौभाग्य का आगर दिखाई देगा और हम अपना व्यक्तिगत दुख उस अपूर्व आनंद की संतृप्ति में पूर्णतः भूल जाएँगे। और अंततः 'कळ पळे दुरी' (दर्द जाएँगे दूर)—ऐसी आवस्था हो जाएगी। लौकिक जीवन तथा इस जीवन से परे रहनेवाले काल्पनिक विषय के लिए अपने इन्हीं विचारों के कारण भास्करजी तांबे जैसे आधुनिक कवि मराठी कविता-संसार मे एक विशिष्ट स्थान के अधिकारी हैं।

# 3

# तांबे का प्रणय-काव्य

पिछले अध्यायों में भास्करजी के जीवन एवं संस्कारो का विवरण दिया गया है। विभिन्न सस्कारो की सहायता से किस प्रकार उनका व्यक्तित्व विकसित होता गया, यह भी हमने देखा। इनमें हमें उनके स्वभाव का परिचय मिला। साथ ही, उनके लेखों एवं प्रासंगिक भाषणों द्वारा व्यक्त किए गए उनके कला तथा काव्य विषयक विचारों का परिचय प्राप्त हुआ। उनकी जीवन को देखने की दृष्टि का ज्ञान मिला। अब हमें उनके कविता संसार से परिचित होना है।

भास्कर की कविताएँ पढकर सर्वप्रथम यह बात ध्यान में आती है कि उनकी कविताएँ सख्या मे बहुत अधिक नहीं है परन्तु उनका लेखन-काल प्रदीर्घ रहा है। पचास वर्षों के समय में भास्करजी ने तकरीबन दो सौ पचास कविताएँ लिखी। पचीस से लेकर साठ वर्ष की आयु तक लगातार प्रेमभावनाओं से प्रेरणा ग्रहण करनेवाले स्वच्छंद एवं सौंदर्यवादी (रोमांटिक कवि) भास्करजी को समझते-समझते जीवन के उत्तरार्ध में हमें रहस्यवादी बनते जानेवाले भास्करजी का परिचय मिल जाता है। उनकी रहस्यवादी कविताओ का चिंतन अगले अध्याय में किया जाएगा। इसमें सतत् सर्वत्र सान्त-अनंत का विचार करनेवाले भास्करजी दिखाई देंगे। भास्करजी की इन कविताओं से उनके सौंदर्य निष्ठ रहस्यवाद (रोमांटिक-मिस्टिसिज़्म) का दर्शन होता है। परन्तु यह तो स्वीकार करना ही होगा कि विविध रंगो से सजी उनकी प्रेम कविताओं के कारण ही तांबे मराठी काव्य रसिकों को विशेष प्रिय है, उनके अधिक निकट है।

तांबे की कविता पर मुग्ध होकर श्री लक्ष्मणशास्त्री लेले ने उन्हें 'शृंगार-मधुमत्तमिलिंद' कहा था। इस अध्याय में हम तांबे की जिन कविताओं के बारे में विचार करेंगे, उनमें से कुछ उन्होंने अपनी पत्नी के लिए लिखी, प्रेम के प्रति

कृतार्थभाव दर्शाने वाली, कुछ छोटी कविताएँ तथा कुछ तादात्म्य कविताएँ होंगी। विधवाओं के प्रति तांबे के हृदय में बड़ी संवेदना थी। उसे व्यक्त करने-वाली विविध वेदनापूर्ण कविताएँ भी एक प्रकार के प्रेम गीत ही हैं। उनके बारे में भी यहाँ विचार किया जाएगा।

**पत्नीविषयक कविताएँ :**

तांबे की सौंदर्यासक्त कल्पना को स्फूर्ति देनेवाली सौंदर्यवती रमणी उनकी अपनी प्रिय पत्नी ही थी। इस साधारण सीधी-सादी पत्नी को विषय बनाकर लिखे हुए उनके प्रेमगीत मराठी काव्य की सृष्टि में बेजोड़ हैं। रे. तिलक तथा कवि केशवसुत ने भी पत्नी प्रेम पर कविताएँ लिखीं है। केशवसुत के पत्नी-प्रेम में आसक्ति है। रे. तिलक पत्नी के गुणो का आदर करते हैं। किन्तु भास्करजीके प्रेम में अनन्त प्रेम और आत्मसमर्पण की भावना है। तांबे समझते हैं कि पत्नी के प्रति अपना उत्कट प्रेम व्यक्त करना कोई लज्जाजनक प्रसंग नहीं। अत: विवाह के पश्चात् लिखी गयी कविता उनकी अंतर्मुखी दृष्टि व्यक्त करती है। उसमें बाह्य सौंदर्य अथवा ऊपरी दिखाऊ प्रेम नही हैं। विवाह के उपरान्त भावनाओं की विकृति विनष्ट हो जाती है और वे शुद्ध तथा पवित्र अवस्था में काव्य बनकर सामने आती हैं। इसका श्रेय तावे अपनी पत्नी को देते हैं। विवाहोपरान्त पत्नी के प्रति अपने प्रेम को दर्शाने वाली लगभग चालीस प्रेम कविताओं की एक माला ही उन्होंने गूँथ डाली है। प्रेम-समाधि में अपना अस्तित्व भुला देनेवाला यह एक उत्कट काव्याविष्कार है। इसमें स्वकीया के प्रति एकनिष्ठ तथा अव्यभिचारी प्रेम का प्रदर्शन है। प्रेम में ओत-प्रोत इन कविताओं में वैवाहिक जीवन के नित नये विलास का दर्शन है। 'कान्तेस' जैसी कविता में प्रेम के शारीरिक पहलू का वर्णन उन्हे अयोग्य नहीं लगता। वे लिखते हैं :

'हृदय व्याप लिया कान्ता के प्रथम रस ने ही'[1]

[वह रम्य रजनी]

अथवा

'तुम्हारी मूरत झलकते ही अनुपम शयनागार लगा खिलने'[2]

[आशा, शब्द और दर्शन]

तांबे यह मानते है कि इंद्रियज अनुभव नश्वर है परन्तु उसकी सच्चाई

1. 'कान्तेने पहिल्या रसेचि हृदया का टाकिले व्यापुनि' (ती रम्या रजनी)
2. 'कान्ते त्वन्मूर्ति येता अनुपम शयनागार लागे खुलाया'
(आशा, शब्द आणि दर्शन)

अनुभव सिद्ध तथा काव्य प्रेरणा देनेवाली होती है। उसके मतानुसार प्रेम में कामवासना को वर्ज्य मानकर, उसपर से जानबूझकर ध्यान हटाकर काव्य में दिव्य, अपार्थिव, ज्योति:संगम जैसे शब्दों का प्रयोग करने से प्रेम में ऊँचाई अथवा पवित्रता नहीं आ जाती।

शरीर से विभक्त दो जीव जब प्रेम-बंधन मे बँध जाते हैं तब दोनों में एक सहसवेदना का भी बंधन होता है—

'नील मेघ गरजा मेरे सिर पर
हो रही वर्षा तुम्हारे नयनों से झर झर,
शरदचंद्र इस हृदय मे उगा
मन में क्यों तुम्हारे शीतल आभा ?

मदिरा का प्याला मैंने पिया
मद उसमें मेरी परम प्रिया
किसने बाँधा दो जीवों को
क्या केवल मंत्रबंधन से ? क्यो ?'[1]

[कोई मेरी पहेली सुलझाए]

उत्कटता की चरम सीमा पर पहुँचनेवाली प्रीति भक्ति कहलाती है। ऐसे एकांत मे श्लील-अश्लील का विचार ही संभव नहीं होता। भास्करजी कहते है—

'मोह अचानक मुझको घेरे
फिसल वक्ष से आँचल सरके

1. "माझ्या शिरिं ढग निळा डवंरला,
तुझ्या नयनिं पाउस खळखळला;
शरच्चद्र या हृदयिं उगलवा,
प्रभा तुझ्या उरिं शीतल कां ?

मद्याचा मी प्यालो प्याला
प्रिये तयाचा मद तुज आला
कुणी जखडले दोन जिवाला
मंत्र बंधनी केवळ ? का ?"

(कुणि कोडे माझे उकलिल का ?)

विवस्त्र हुई अनजाने मैं
अब ढाँक दो दुशाले से या छोड़ जाओ ऐसी ही।'[3]

[कूद पड़ी हूँ अब]

प्रणय की इस मधुर घड़ी में प्रेमियों को दुनिया की परवाह नहीं होती। दोनों का पर्दा गिर जाता है, दोनो एक हो जाते है। आत्मसमर्पण की यही कल्पना तांबे यहाँ साकार करते हैं। पत्नी के रूप मे उन्हें हरि-करुणा ने स्पर्श किया और इस स्पर्श से उनकी प्रतिभा प्रस्फुटित हुई, काव्य का निर्माण हुआ। अपने इस अनुभव को समझाते हुए भास्कर जी कहते हैं :

'नाना या परि पावल्या जनन गे प्रेमी तुझ्याचि' [तुम्हारे ही प्रेम द्वारा ये अनेक (गीत) जन्म ले सके] से मेरा तात्पर्य यही है कि मेरे सभी प्रणय गीत अपनी पत्नी के प्रति मेरे प्रेम के ही कारण रचे जा सके। यदि मैंने प्रेम को स्वयं आजमाया नहीं होता तो उसके (पत्नी के) बिना प्रणय विषय पर एक पंक्ति भी लिखना मेरे लिए सभव नहीं था।'

[**श्री माधदेव को लिखित पत्र**, दि० 23-8-1920].

प्रेमानुभूति के अद्वैत तथा आत्मसमर्पण के भाव को सफलता से व्यक्त करनेवाली भास्करजी की 'ती रम्या रजनी', 'आशा शब्द आणि दर्शन', 'वदन-मदनरंगसदन', 'सांग हृदय चोरिले' (कहो हृदय चुराया), 'तू जिवलगे विद्यावती (तुम प्रिये विद्यावती)', 'तारुण्यातीत एक प्रसंग (यौवन का एक प्रसंग)', 'प्रेम माहात्म्य', 'कुपित अंगनेप्रत' (कुपित स्त्री के लिए) जैसी सभी कविताएँ प्रेम भावना की विभिन्न छटाएँ साकार करती हैं। 'गेली ज्योति विझोनिया' में वे उत्कट प्रेम के उच्च शिखर पर जा पहुँचते है। इन सभी कविताओं में पत्नी-प्रेम में मुग्ध भास्करजी के दर्शन होते है।

**तांबे का काव्य-शृंगार :**

मिलन की ओर ले जाता मदन जिस शृंगार को मूर्त रूप में उपस्थित करता है उस शृंगार और प्रेम के संबंधों की मीमासा करते समय भास्करजी कहते है—

"कला के प्रारंभ से लेकर आजतक कवियों ने नवरसों में से जिस

---

3. 'मोह अचानक पड़े मजवरी
खर्कन पदरचि गळे पळान्तरि
नग्नचि झाले नकळत सत्वरि
तू घाल शाल, टाकी उघडी।'

(घातली एकदा अता उडी)

एक रस पर सर्वस्व अर्पित किया है, वह शृंगार रस ही है। विश्व में रति-भावना जैसी व्यापक दूसरी कोई भावना नही है।······सारा ससार इसी भावना के इर्द-गिर्द घूमता है। सारी भावनाएँ इसी भावना की वंदना करती है।······मानव हृदय के विषय मे विचार करें तो हम पायेंगे कि सारी भावनाओं के चक्र का आकर्षण केन्द्र रति है। शृंगार रस ने सभी कवियो को लुभाया है। जो इस केन्द्रस्थ भावना की नस पकड़कर सारे भावचक्र को घुमा सकता है वही मनुष्य के कर्त्तव्य का पक्ष भी उज्ज्वल कर सकता है।" **[मालविका प्रस्तावना]**

भास्करजी मानते है कि शृगार तथा पुरुषार्थ के सबंध को न माननेवाला मनुष्य धूर्त मनुष्य है।

जो लोग कहते है कि काव्य में शृगार रस की अधिकता नही होनी चाहिए उनसे तावे जी कहते है—

"मुझे तो लगता है कि शृंगारिक कविता की जितनी निर्मिति होनी चाहिए उतनी अभी भी नही हुई है, यह हमारे देश का दुर्भाग्य ही कहा जाना चाहिए।"

**गोधूलि :**

अपनी पत्नी विषयक प्रेम कविताओं मे वे कभी पत्नी पर नाराज होते है, कभी उसकी बुद्धिमत्ता की प्रशंसा करते है और कभी उसके विभ्रम और अंत:-करण का चित्र खीचते है, कभी वे पत्नी की आराधना करते है तो कभी विरह के दुख मे व्याकुल हो जाते हैं। परन्तु इन सभी कविताओं मे, स्वकीया सहवास द्वारा द्विगुणित होकर छलकनेवाला आनंद दृष्टिगोचर होता है। 'तिन्हीसांजा सखे मिळाल्या' जैसी कविता में प्रेम का सार्वभौमत्व, स्त्री-पुरुष के प्रेम का अद्वैत रूप उन्हें दिखाई देता है, और वह उन्हें प्रकृति जैसा ही सनातन लगता है। प्रकृति एवं मानव की एकरूपता, इस सनातन मिलन के चित्रण में प्रकृति को साक्षी बनाकर संध्या के समय दिये गये प्रेम तथा सहजीवन के आश्वासन की अनुभूति का अनुभव करते हैं। इस कविता का रस-ग्रहण करते हुए प्राध्यापक शांता शेळके कहती है—

"रात्रि और दिवस की मिलन-वेला में प्रेमिका को आश्वासन देने में विशेष बात है। साथ ही, गोधूलि के मुहूर्त की अस्पष्ट-सी सूचना भी मिलती है जो इस मिलन को वैवाहिक पवित्रता का पुट देती है। प्रकृति इस प्रेम मिलन की साक्षी है······मरीचिमाली कनकगोल सूर्य, चक्रवाल अर्थात् आकाश तथा पृथ्वी को जोड़नेवाली क्षितिज पर दिखती हुई पर्वत-

रेखा साक्षी है। आकाश अनत है, धरा सान्त है, अनंत एवं सान्त को जोड़ने वाली क्षितिज रेखा अथवा दिग्मंडल इस स्त्री-पुरुष के मिलन के साक्षी हैं। ऐसा लगता है जैसे प्रकृति, स्त्री-पुरुष, तथा इन सबका मिलन यहाँ एक दूसरे में विलीन होकर एक तत्त्व बन गया है।"

[मधुघट रसदर्शन, पृ० 12]

**प्रम में कृतार्थता :**

विवाहोपरान्त स्वत्व को भूलकर कविताएँ रचनेवाली भास्करजी की काव्य-प्रतिभा सन् 1920 के पश्चात् पुन: एक बार पत्नी प्रेम विषयक कविताएँ हमें प्रदान कर गयी है। परन्तु इस बार की प्रेम कविता प्रौढ़, गंभीर तथा अधिक विकसित है। इसमें प्रेम में मिली तृप्ति, संतोष तथा कृतार्थता का अनुभव है। 'कुणि कोडे माझे उकलिल का' (कोई पहेली मेरी सुलझाए) शीर्षक कविता में प्रेमिका के हृदय में उठ रही मिलन की आतुरता, बेचैनी, हलचल तथा इन सब से संबंधित उक्तियाँ, प्रवृत्तियाँ तथा उनमें छिपा अचूक नाट्य-भाव तांबे अवश्य ही समझ सकते है। ऐसा लगता है कि ये सारी लीलाएँ प्रसन्नता एवं शरारत से देखनेवाले तावे यह कहना चाहते हैं कि प्रेम के ऐसा ही होता है और यह बात वे अकेले ही जानते हैं। इसकी गवाही देने वाला प्रेम के प्रति प्रसन्नता तथा समाधान का स्वर इन कविताओं मे सुनाई देता है। प्रेमियो के जीवन मे ऐसी घटनाएँ घटती हैं कि प्रेयसी के हृदय में जलने वाले दीपक की आभा प्रिय के मुख पर दिखाई देती है। एक के हृदय में खिले गुलाब का रंग दूसरे के गालो पर दिखाई देता है। काँटा गडने की प्रक्रिया शूल चुभने में और मेघों के गरजने की प्रतिक्रिया नयनों से वर्षा होने में कैसे हो जाती है; दोनों के मिलन से निर्मित होनेवाले स्पंदन की पहेली जैसे कवि से सुलझ नहीं पाती।

इसी मनोवस्था से उनकी मिलन के मधुर क्षणों को चित्रित करनेवाली 'मग विसर हवा तर हा क्षण गे' (फिर भूल जाना चाहे यह क्षण प्रिये) कविता अवतरित होती है। अनंत जन्मों का संचय देकर यह क्षण प्राप्त होता है। मिलन के क्षण तथा मिलन के बाद की अवस्था वे मिलन से पूर्व के क्षण में ही साकार कर देते हैं। मिलन की प्रतीक्षा, आतुरता तथा प्रत्यक्ष मिलन के आनंद की सीमा पर आत्म-समर्पित आनद-समाधि मे यह कविता विसर्जित होती है।

**सहज अंगविक्षेप :**

भास्करजी युवावस्था में जिस प्रकार पत्नी के प्रेम रूप का वर्णन करते हैं, ठीक वैसा ही निरूपण अपनी ढलती उम्र मे भी कर सकते हैं। युवा भास्करजी पत्नी के प्रेम में अपना सर्वस्व अर्पित करते है और फिर उस प्रेम की कृतार्थता का अनुभव लेते है। इसके बाद पत्नी के एक नये ही रूप का ज्ञान उन्हें होता

है। अपनी एक कविता 'सब कहें साँवली' (जन म्हणति सावळी) मे वे कहते हैं कि जिन लोगों को मेरा जीवन सुफलित करनेवाली मेरी पत्नी का केवल बाह्यरूप ही दिखाई देता है, वे सब अंधे एवं करुणा के पात्र है। अपनी पत्नी को काली यमुना की उपमा देते हुए वे कहते हैं :

'सुंदर अगाध साँवली यमुना
तीर पर सघन वृक्ष की पाँत
श्याम जल में धुल गये मनोविकार
सुध बुध खो बैठा वनमाली'[1]

(लोग कहें साँवली)

ताँबे कहते हैं कि जनसाधारण के पास उनके जैसे सौदर्य को समझने वाले नेत्र नही हैं, अत: वे अपनी पत्नी के जिस तेजस्वी रूप को देख सकते है वह सामान्य लोगों की समझ से परे है। नित्य के साधारण वस्त्रों मे पत्नी के क्रिया-कलापों को देखकर वे प्रेरणा पाते है, प्रतिभा के अलौकिक विश्व मे पहुँच जाते हैं; पत्नी में ही उन्हें अनद्यतन स्त्री तथा देवदुर्लभ आदिमाता के दर्शन होते है। विधाता की इस अद्भुत, अगाध एवं अपूर्व कारीगरी को देखकर स्तभित हो वे सौदर्य समाधि मे लीन हो जाते है और 'सहज तुझी हालचाल' जैसी कविता का जन्म होता है। पत्नी के रूप मे उन्हें वनदेवी के दर्शन होते हैं, नव-नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा के दर्शन होते हैं। उन्हें भ्रम होता है कहीं यह प्रत्यक्ष भैरवी तो नहीं! पत्नी के रूप में सार्वभौम सामर्थ्य का साक्षात्कार देखते हुए, उसे महसूस करते हुए वे कहते है :

'यह शक्ति अपूर्व सगुण
बुहार रही मेरा प्रांगण
सौभाग्य देख यह मेरा, कही
ईर्ष्या से न जल उठे देवगण।'[2]

[सहज तुम्हारी हालचाल]

---

1. 'अगाध सुंदर यमुना काळी
तिरी गर्द झाडाच्या श्रोळी
वेडा झाला तो वनमाळी
उजळते मनोमल शाम जळे !'

(जन म्हणति सावळी)

2. 'ही अपूर्व शक्ति सगुण
झाडितसे मम अगण
हे माझे भाग्य बघुनि
जळफळतील देव ते।'

(सहज तुझी हालचाल)

स्त्री की संपूर्ण महानता का चित्रण करनेवाले भास्करजी के मन में रह रहकर शंका उठती है कि 'मैं पत्नी का सुयोग्य साथी हूँ या नहीं ! पत्नी को सुख देने में कही मैं असमर्थ तो नहीं ?' यह विचार मन में आते ही वे कहते हैं :

'प्रिया, संग मेरे, विस्तार दुखों का चलकर आया
तुमने सँभाली गृहस्थी, न कोई सुख पाया ।'[1]

**स्त्री—चिद्शक्ति का एक रूप :**

तांबे कहते हैं कि स्त्री को बनानेवाला परमेश्वर बड़ा अद्भुत कारीगर है। इन्दौर में एक बार किसी स्नेही के घर जाते हुए रास्ते में उन्होंने स्नान करके अपने घर से निकलकर सामने की गली में जाती हुई एक युवा लड़की को देखा। उस सौंदर्यवती के आनितंब लहराते हुए काले केश, काव्यलता पर खिले दो पुष्पों के समान आँखे, चद्रमा जैसा कांतिमय गौरभाल देखकर उन्हें लगा कि वे चिद्शक्ति अनंत का ही एक रूप देख रहे हैं। इसी स्मृति ने बाद में गुदरखेड़ा पहुँचकर काव्य का रूप लिया। दृश्य जगत् का सौदर्य कल्पना-विश्व के आनंद का ही विलास है यह माननेवाले भास्करजी को उस कन्या में अपरूप सौदर्य (आयडियल ब्यूटी) दिखाई दी। कलाकार को जैसे रमा शारदा का साक्षात्कार हुआ, और उनके मुख से उद्गार निकले :

'विधि की यह रचना, कविता बन विधि के हृदय में विहार कर रही'[2]

पार्थिव से परे, एक अभिजात कलाकार की दृष्टि से भास्करजी इसे देखते है। उन्हें लगता है कि कला की सृष्टि में निरामय आनद के अलावा कुछ भी नहीं है। हाड़-मांस की जीवित लावण्यलता को परमेश्वर की कलाकृति मानकर तांबे को अनंत अलौकिक कृति के दर्शन-सुख की अनुभूति होती है। ऐसे कलाकार विकारों, वासनाओं से सर्वथा परे होते है। जिनके हृदय में वासना का स्पर्श होता है, उनके विषय में कवि कहता है :

'देखकर इस सुंदरी को, पापमय स्मृति नर के मन में रही
धिक्कार ! उसने हरि की अगाध कारीगरी समझी ही नहीं'[3]

---

1. 'जिवलगे । संगि मम सारा दुःखाचा माल पसारा
   जुपलिस सदा संसारा, ठावा न सुखाचा वारा'
2. 'वाटे ही रचिता, विहार कविता चित्ती विधीच्या करी'
3. 'पापाची स्मृति राहिली जर नरा पाहुन ही सुदरी
   धिक् धिक् ! त्या कळली अगाध हरिची नाहीच कारागिरी !'

तांबे को नारी को अबला कहना पसंद नहीं। 'स्त्री ला नमस्कार हा' (स्त्री को प्रणाम यह) नामक कविता में वे कहते हैं कि नारी की महानता के आगे तो सारे देवों को भी माथा टेकना पड़ता है। 'भयचकित नमावे तुज रमणी' (भय चकित नमन तुम्हें हे रमणी) कविता में नारी के सर्वकालीन, सर्वव्यापी सत्कार्यो के विषय में लिखकर वे उसकी शक्ति तथा सामर्थ्य की भी प्रशंसा है। इस प्रकार उनकी कविता मे नारी के विविध रूपों के दर्शन होते हैं।

**प्रेमभावना के चित्र :**

तांबे अपनी विभिन्न कविताओं द्वारा प्रेमभावनाओं के अनेक पहलुओं के चित्र खींचते हैं। वे प्रीति के मुक्त चित्रों को सजीव, उत्कट एवं विविध रूपों में साकार करते है। अपनी पत्नी के प्रेम में सर्वस्व न्योछावर कर देने वाले भास्करजी दूसरों की प्रेम भावना के चित्र प्रस्तुत करते समय भी उतने ही विभोर हो जाते हैं। किसी क्षण वे युवाओं के साथ युवा और कभी मुग्धा के साथ मुग्ध हो जाते है। अपनी आयु का उन्हें स्मरण नहीं रहता। उनकी सर्वस्पर्शी प्रतिभा उत्कट हो उठती है। प्रेमियों से उनका तादात्म्य बंध जाता है क्योंकि दूसरे के हृदय में प्रवेश करने की सिद्धि उन्हें प्राप्त है। यहीं प्रेमभावना, उत्कट, सुंदर काव्य का रूप ले लेती है। इस 'तादात्म्य शक्ति' के विषय में तांबे लिखते हैं : 'अपने को आसपास की वस्तुओं से एकात्म कर लेने की यह तादात्म्य शक्ति कवि के लिए बहुत बड़ा वरदान है। उसका मूल स्रोत दूसरे के प्रति सहानुभूति एवं करुणा मे है। कवि की योग्यता इसी में है कि वह दूसरे के आनंद एवं दुखों को अपनाकर, अपने विषय के साथ एकरूप हो सके, अपने आपको पूर्णतया उसमे रूपान्तरित कर दे।' [अप्रकाशित तांबे, पृ० 11-12]

पूर्ण प्रेम की महत्ता का वर्णन हमें तांबे की कविताओं मे मिलता है। दूसरे के हृदय में प्रवेश करने की यह सिद्धि हम कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर में भी पाते हैं। यही कारण है कि व्यापक सहानुभूति से ओतप्रोत परभावना से एकरूप हो जानेवाली भास्करजी की कविता पढ़ते समय हमेशा ही रवीन्द्रनाथ की याद आती है। संगीत का ज्ञान तथा दूसरे के हृदय मे प्रवेश करने की प्रवृत्ति के कारण अल्हड़ कुमारिका से लेकर प्रौढ एवं घर गृहस्थी संभालनेवाली स्त्री तक भाव-जगत में वे एकरूप हो जाते हैं। प्रथम दर्शन के समय हृदय में उत्पन्न होनेवाली प्रेमभावना और पचास वर्षो के बाद पुन: जागृत होनेवाली प्रीति की स्मृति दोनों के उत्कट प्रणय चित्र वे रेखांकित करते है।

**जल से छलकती गगरी :**

इस कविता में गगरी लेकर पानी भरने के लिए जाकर वहीं सुध-बुध खो जाने वाली प्रमदा की भावनाओं से एकरूप हो जाने वाले कवि तांबे हमे दिखाई

देते हैं। 'इस प्रमदा की सारी सखियाँ चली गई है, ऊपर तक भरी गगरी छलकती जा रही है, परन्तु वह वैसे ही खड़ी है। पानी छलकने की आवाज़ तक उसे सुनायी नहीं देती। कुछ सुनने की धुन में वह देह की सुध भूले खड़ी है, कंधे से साड़ी के पल्लू के गिरने का भी उसे पता नहीं। वह किसी की प्रतीक्षा कर रही है। उसे भ्रम होता है उसकी पदचाप का, उसकी आवाज का, उसकी सीटी के बजने का। वास्तव में यह आवाज़ है खेतों में लहलहाती फ़सल की, हवा की, वेणु-कुंज से निकले स्वरों की। वास्तविकता उसे दिखाई नहीं देती और जो नहीं है, वह उसे सत्य लगता है। कितना समय यूँ ही बीत गया है, कौन जाने! सारे लोग अपनी-अपनी जगह चले गये हैं और यह वहीं, वैसे ही, पानी में खड़ी है! अचंचल!'

जल के ध्यान में यह जैसे ही आती है, वह चंचल होने लगता है। हवा का बहाव जोर पकड़ता जाता है। इस प्रेम-दीवानी को देखकर लताएँ कौतुक से हँसती है, वृक्ष डोलने लगते हैं।

[**अर्वाचीन मराठी सारस्वतकार**, व. दि. कुलकर्णी, पृ. 107]

इस सारे तादात्म्य चित्र में कवि उस वृक्ष के समान ही सब कुछ देखता है, मुग्ध होकर डोलता है। तांबे को भी दूसरे के हृदय में प्रवेश करने की, तादात्म्य की ईश्वरीय देन प्राप्त है।

'कार्या सैकतलीन हंस मिथुना'—कालिदास के शाकुंतलम् का यह श्लोक, चित्रण की दृष्टि से सर्वोत्कृष्ट समझा जाता है। तांबे के कुछ गीत—'घट भरे प्रवाही' (घट भरे प्रवाह में), 'घट तिचा रिकामा' (घट खाली उसका) 'दरडीवरील बाला' (चट्टान पर खड़ी बाला) इस श्लोक की बराबरी के हैं, ऐसा कहना कुछ अनुचित नहीं होगा। भास्करजी प्रेम की लम्बी-चौड़ी चर्चा न करके शब्दों द्वारा प्रत्यक्ष प्रणय-चित्र खींचते हैं। कवि को 'चित्र-मूल्य, (पिक्टोरियल वैल्यू) का पर्याप्त ज्ञान है। तभी ये चित्र सहज ही रंग-रेखा-आकृति का रूप ले लेते है। इन कविताओं में प्रकृति के माध्यम से प्रेम को साकार किया गया है। नैसर्गिक पार्श्वभूमि में प्रणयभावना में डूबी हुई प्रेमिका का चित्रण अधिक प्रभावशाली हो जाता है।

'ते दूध तुझ्या त्या घटातले' (वह दूध तुम्हारे घट का) शीर्षक के छोटे-से गीत मे भी यही चित्र मूल्य का ज्ञान दिखाई देता है। इसमे प्रणय-भावना अधिक सूक्ष्म, स्निग्ध तथा निर्दोष है। शब्द व्यंजना द्वारा उस्फूर्त भावना संयमित है। दूध दुहने की लय तथा संगीत में प्रीति-भावना के स्वर एकरूप हो जाते हैं और सारा वातारवण दूध दुहनेवाली लड़की, उसके घड़े का दूध, उसका प्रियकर, सब मिल कर एक प्रणय स्निग्ध चित्र का निर्माण करते है।

'दरडीवरील बाला' (घाट पर खडी बाला) में प्रेम में मतवाली एक युवा लड़की की अवस्था का चित्रण है। रुद्र भीषण प्रकृति की पार्श्वभूमि मे ससार को भूलकर अपने प्रियतम की प्रतीक्षा करने वाली यह युवा प्रेमिका कवि को साक्षात् प्रेममूर्ति ही लगती है। 'वायो खुणव तीस' (उसे इशारा करना ऐ हवा) मे तांबे एक प्रेमिका की उत्कट' अविचल, मूक प्रीति का गौरवगान गाते है। इस कविता के प्रेमी का प्रेम अभिव्यक्त करने का तरीक़ा मूक तथा काव्य-मय है। वह कहता है :

"अपना हृदय रूपी फूल मैं यहाँ रखता हूँ
हवा तू इसकी सुगध बहाकर ले जाना
उसे सकेत देगा।[1]

ताबे में प्रेमानुभूति का वर्णन निराशावादी दृष्टि से चित्रित करने की वृत्ति नहीं। यह इस कविता से भी स्पष्ट होता है।

**विधवा व्यथा का चित्रण :**

पत्नी के प्रति प्रेम अभिव्यक्त करने वाले, प्रेमियों के हृदय का चित्र खीचने वाले, नारी को ईश्वर की सुदर रचना का रूप मानकर गौरवान्वित करनेवाले तांबे समाज मे विधवाओं की दुर्दशा देखकर व्यथित हो उठते हैं। तावे जिस समय काव्य-प्रणयन कर रहे थे, वह समय महाराष्ट्र मे सामाजिक पुनर्जागरण का काल था। नारी पर होने वाले अन्याय के बारे में समाज सुधारक चर्चा कर रहे थे। केशवसुत जैसे सुप्रसिद्ध कवि की प्रतिभा भी इसी संक्रांति को ध्यान मे रखकर विधवाओं के दुखों को काव्यरूप प्रदान कर रही थी। तांबे ने भी इसी कालखड में विधवाओ की मनोव्यथा को काव्य द्वारा व्यक्त किया। यद्यपि इन कविताओं मे सामाजिक व्यजना को स्थान मिला है, फिर भी मूल भाव-ततु प्रेम कविता का ही है। ये भी प्रेम कविताएँ ही लगती हैं।

'नि:शब्द आत्मयज्ञ' मे एक हिन्दू-विधवा किसी युवा को अपना हृदय दे बैठी है। परन्तु समाज की दृष्टि से विधवा के हृदय में प्रेम का विचार आना अनुचित, पापमय या अधर्मकारी है। सामाजिक रूढ़ियों के बाहर विचार न कर सकने के कारण यह विधवा समाज के विरुद्ध क्राति न करके, अपना प्रेम व्यक्त किये बिना ही, घुट-घुट कर देह त्याग-देती है। 'विधवेचे स्वप्न' (विधवा का स्वप्न) कविता मे विधवा का मृत पति बार-बार स्वप्न मे आता है, जिससे धीरे-धीरे उसे जागृति की अपेक्षा निद्रा ही स्वाभाविक लगने लगती है। निद्रा

1. 'मी टाकितो येथ काळीज हे फुल
वायो खुणव तीस ने वास वाहोनि।'

को ही वह प्रकृति और जागृति को वह विकृति समझने लगती है !

'बघुनि तया मज होय कसे से !' (उसे देख मुझे कुछ होता है) 'हिन्दू विधवेचे मन', (हिन्दू विधवा का मन) 'ते कान्त यापुढ़े' (वे कान्त अब से), अथवा 'चवणाखालिल हाय मीच रज' (चरणों की हाय मे रज) कविताओं में तांबे ने विधवाओं की विभिन्न मनोव्यथा साकार की है। बघुनि तया मज होय कसे से' (उसे देख मुझे कुछ होता है) में अभागिन विधवा व्यर्थ ही मन की आग बुझाने को अपने मन को ही अपने प्रेम के विषय में बताती है। भास्करजी कहते है :

> 'यहाँ एक युवा लड़के को देखकर एक युवा विधवा के हृदय मे अनजाने में ही प्रेम का अंकुर फूट पड़ा है ! इस कोमल भावना का मूक प्रबोधन उसका जीवन और भी दयनीय बना देता है। क्योकि उसके लिए सारे दरवाज़े बंद है।'
>
> [**श्री माधदेव को लिखित पत्र**, दि० 24-9-1920]

'मृत समझ मुझे तृण सा फेंक देते हैं जन
वासना के पिशाच भयभीत करते है मेरा मन'[1]

ठंडा मृत-सा शरीर इस हृदयद्रावक आत्म कथन में काव्यरूप ले लेता है। जो असभाव्य है, उनका नाम भी नही लेना है यह कहनेवाली विधवा, रूढ़िवादी समाज को अच्छी तरह जानती है। परन्तु विधवा के हृदय मे भी सवेदना, भावना और विकार हो सकते है, इस बात की समझ समाज को नहीं है। 'हिन्दू विधवेचे मन' शीर्षक की इस कविता के माध्यम से तांबे ने विधवाओं के विषय मे अपने विचार स्पष्ट रूप से सामने रखे हैं। इससे उनकी मनोव्यथा स्पष्ट दिखाई देती है। प्रेम की भूख विधवा को भी स्वाभाविक रूप से लगती है यह बड़ी व्याकुलता से बताते हुए वे कहते हैं :

"मैं क्या मानव नहीं ? क्या मेरे हृदय नहीं ?
भाव का आवेग नहीं ?"[2]

फिर शास्त्रों को समाज को, धिक्कारनेवाली कोई धैर्यवती साकार होती है और कहती है :

---

1. 'तृणसम जन मज टाकि जणु शवा
वासना भुते भिवविति जीवा'
2. 'मी न मनुज का ? काय न मज मन ?
नच विकार का ?'

"शास्त्रों को भुला दो,
वह है जुल्म तुम सब का, उसे जला दो।' '[3]

अंत:करण मे स्वाभाविक रूप से फलने-फूलनेवाली भावनाओ को, कुचलने का प्रयत्न करने वाले समाज को धिक्कारते हुए वह कहती है :

"मै कान्ता उनकी, वे है कान्त मेरे अब
कोई कुछ कहे चाहे कुछ भी कर ले अब "[1]

अपने मनोदेवता का आश्वासन लेकर प्रिय के साथ निर्भय मुक्त जीवन जीने की इच्छा रखनेवाली विधवा का चित्र साकार करते समय तांबे का आशावाद दिखाई देता है। एक पत्र में वे लिखते है :

"विधवाओं के दुख दर्शानेवाले वाले मेरे गीत निराशावादी नही है···। उनमें एक अतिम मूक आशा की किरण विद्यमान है कि विधवा को भी एक दिन सुख के पवित्र मंदिर मे पुन: प्रवेश मिलेगा।"

**[श्री मायदेव को लिखित पत्र**, दि० 1-11-1920]

मराठी प्रेमगीतो में तांबे जी की कविता को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। वे किसी समाज सुधारक के समान विधवाओ की सामाजिक स्थिति पर भाषण नहीं देते। परन्तु विधवाओं के भाव-जगत् की वेदनाओं को इस प्रकार साकार करते हैं जिससे कि वाचकों के हृदय पर उनका गहरा प्रभाव पड़ता है। चाहे विधवा के स्वप्न का वर्णन हो, चाहे नि:शब्द आत्मदहन की सवेदना हो, या समर्पित जीवन की करुण कहानी हो, तांबे की कविताओं द्वारा प्रगट होनेवाला भावनापूर्ण आलेख पाठकों के हृदय पर रूढ़-धर्म से श्रेष्ठतम नीति की छाप छोड़ जाता है। उनकी कविता हृदय का स्पर्श कर विचारों को गति देती है।

प्रेम भावनाओ का कविताओं द्वारा चित्रण भास्करजी ने पचीस वर्ष की उम्र में भी किया था और साठ की परिपक्व आयु में भी किया। प्रेम भावनापूर्ण सौंदर्य उन्हें हमेशा ही स्फूर्तिदायक लगा। युवावस्था मे स्त्री के बाह्य सौंदर्य को ही सर्वस्व समझने वाले अथवा चालीस की उम्र पार कर लेने के पश्चात् नैतिक श्रेष्ठता को ही सच्चा सौंदर्य माननेवाले सामान्य लेखकों से तांबे की तुलना हो ही नही सकती। श्री के. क्षीरसागर कहते है :

"भास्करजी तांबे अथवा ब्राउनिंग जैसे कवि वृद्धावस्था में भी युवा

---

3· 'कुणि म्हणा लाविल हरताळचि शास्त्राला
तो जुलूम तुमचा ! आग लागू देत्याला।'

1· 'ते कान्त यापुढे मीचि तयाची कान्ता।
कुणि कसे म्हणा, कुणि करा हवे ते आता॥'

हृदय की उत्कट भावनाएँ साकार कर सकते हैं और युवावस्था में भी वे परिपक्व आयु में होने वाली नैतिक दृष्टि से अनभिज्ञ नहीं रहते। इसका रहस्य उनकी श्रेष्ठ सौंदर्योपासना में होता है। जब तांबे जैसा कवि किसी रमणी पर लुब्ध होता है, तब वह ईश्वर को भुला नहीं देता और ईश्वर भक्ति के पद गाने के लिए उसे रमणी को भुलाना आवश्यक नहीं होता।"

[**लोकशिक्षण**, मई 1936]

श्री क्षीरसागर के मतानुसार, मराठी साहित्य मे तांबे के अलावा ऐसा दूसरा कवि ढूँढ़ना असंभव है, जिसने प्रीति के मुक्त चित्र इतने विविधपूर्ण, सजीव तथा उत्कट रूप में खीचे हों। प्रेम ही अंतिम मूल्य है, अंतिम सौंदर्य है इस प्रतीति तक पहुँचकर भास्करजी 'उस पार' से कभी-कभी प्रेमभंग के चित्र भी साकार कर देते हैं। इन चित्रों मे रोष या क्षोभ नही बल्कि एक कृतज्ञतापूर्ण स्वीकार-बुद्धि देखी जा सकती है। प्रेम में मत्त, धुंध कविवृत्ति की लय है !

[**मराठी साहित्य पत्रिका**, अक्टूबर 1973]

भास्करजी तांबे की सौंदर्यप्रिय दृष्टि उनकी कविता में हर जगह दिखाई देती है। सौंदर्य के नित्य नवीन रूप देखकर वे स्तिमित होते हैं, पुलकित होते है। सौंदर्यवादी मनुष्य अपने अंतर्मन के अनुभव से अधिक संबद्ध होता है। ऐसे व्यक्ति को बाह्य विश्व के प्रति प्रेम तो होता ही है परन्तु साथ ही 'उस पार' वाले विश्व के प्रति भी सहज ललक होती है। उसका मन इस द्वंद्व में उलझा रहता है। बाह्य सौंदर्य की अपेक्षा भीतरी सौंदर्य पर वह अधिक मोहित होता है। इस संघर्ष द्वारा उत्पन्न पराभव, उदासीनता और संवेदना के चित्र वह अंकित करता है। केशवसुत, बालकवि, गडकरी जैसे कवियों को भावपूर्ण कविताओं में भी इसी स्वच्छन्द उदासी, इसी सौंदर्य-प्रेरित उत्कंठा के कितने ही चित्र मिलते हैं।

यद्यपि भास्करजी की काव्य-वृत्ति स्वच्छन्द है, फिर भी उनकी कविताओं में उदासीनता या दुख स्थायी भाव बनकर नहीं आये है। तांबे को वस्तु के आंतरिक, मूल सौंदर्य का ज्ञान होने के कारण उनकी कविताओं, विशेषत: प्रेम-कविताओं में आदि सौंदर्य का विलास मुक्तरूप से प्रगट होता रहता है। उसमें उदासीनता अथवा संवेदना की अपेक्षा एक प्रकार की आश्चर्य एवं अपरिमित आनंद की ध्वनि होती है।

# 4

# कवि तांबे एवं रहस्यवाद

सन् 1918 के पश्चात् की भास्करजी की कविताओं मे अंतर लक्ष्य किया जा सकता है। यह काल प्रेम का भक्ति में रूपान्तर होने का काल है। अनंत का स्वरूप जानने की अनिवार्य इच्छा इस समय में दिखाई देती है। भास्करजी अद्वैतवादी हैं। पिछले अध्याय मे सान्त और अनंत की उनकी परिकल्पना के विषय में विचार किया गया था। इस अध्याय में भास्करजी अनंत की प्रतीति पाते दिखायी देते है।

**अनंतत्व का विचार :**

जिस एकमेव अद्वितीय मूल तत्त्व से यह विश्व विकसित हुआ है, उस अनंतत्व मे भास्करजी को केवल सौंदर्य, केवल सत्य तथा केवल आनद दिखाई देता है। भास्करजी की काव्य-प्रतिभा इस अनतत्व की प्रतीति के लिए तत्पर है। यह व्याकुलता किस प्रकार व्यक्त की जाए, यह प्रश्न अब उनके सम्मुख है। 'प्रभो, तुज कवणेपरि ध्याऊँ ?' (प्रभु, कैसे ध्यान करूँ तुम्हारा ?) इस कविता मे वे स्पष्ट करते है। परमेश्वर का रूप साकार करने का प्रयास करते हुए वे कहते है :

"चिद्घन तू, जड़ मेरी वाणी
सुख तू, यह दुखों की खान
तू अनंत है, सान्त मेरे गान
कैसे तव गाऊँ ?"[1]

---

1. 'चिद्घन तू, ही जड मम वाणी;
सुख तू ही दु.खाची खाणी;
अनत तू. ही सान्तचि गाणी;
कैशी तव गाऊ ?'

अनंतत्व को जानने का प्रयत्न करनेवाला कवि अंत में किस प्रकार विवश तथा असहाय हो जाता है यह वे अपनी कविता द्वारा कहते है :

'मै बालक नन्हा घन तिमिर में
असहाय प्रकाश पाने मे
हाथ नचाऊँ, रोता जाऊँ
कैसे हृदय दिखाऊँ ?'[1]

**चिद्विलासवादी सान्तत्व-अनत की जयजयकार** :

यह अनंतत्व सारे विश्व को व्याप्त करने के बाद भी समाप्त नहीं होता यह भावना वे अपनी 'मंदिरी मना तव गान भरे' कविता में व्यक्त करते हैं। अनंतत्व सप्त सुरों के बंधन से परे है। वह जल, थल, काष्ठ, पाषाण, सबमें विद्यमान है, सर्वत्र विराजमान है। परन्तु कवि को लगता है कि उसे समझने की योग्यता उसमे नहीं है। इसलिए वे कहते है :

'हाय ! मन मेरे तेरे भाग जले
अपने घर की बात तू न समझा पगले
जन्म मरण में राह तुझे ढूँढ़े न मिले
जा चीर हृदय, तड़प-तड़प कर मर जा'[2]

[मन मंदिर में गीत तुम्हारे]

इस प्रकार वे स्वयं को दोष देते हैं परन्तु अनंत को समझने का अपना प्रयत्न नहीं छोड़ते। 'या प्रकाश शिखरी' कविता में इस शोधकार्य का मार्ग मिल गया है ऐसा उन्हें लगता है। इस मार्गदर्शक के ऋण को वे स्वीकार करते हैं। सारे विश्व में अबउन्हें अनत ही का विलास दिखाई देता है। वे उसकी जयजयकार करते हैं।

---

1. 'घनतिमिरीं मी बालक तान्हें
प्रकाशार्थ अति केविलवाणे
हात नाचवी टाहो जाणे,
केवि हृदय दावू ?'

(प्रभो तुज कवणेपरि ध्याऊ ?)

2. 'हाय मना तव कपाळ फुटले
तुझ्याच घरचे तुलाच न कळे
जन्ममरणि वध खेटर न मिळे
जा, फोड ऊर, तळमळ, मर रे।'

(मंदिरी मना तव गान भरे)

'अनंत तेरा ही विश्व, तारे तेरे
ब्रह्मांड रूप तेरा, सब कुछ तेरा
तेरी है कृति सारी हे मनमोहन
दिन रात गाऊँ गुणगान तेरा !'[1] [अनंत स्तोत्र]

उन्हें लगता है कि इस संपूर्ण विश्व को व्याप्त कर लेने वाले आदि संगीत की माधुरी का एक हारवाँ हिस्सा भी यदि उनके काव्य को मिल जाए तो वे पावन-सार्थक हो जाएँगे। वे समझते हैं कि जिस हरि करुणा के कारण आकाश से वर्षा होती है, आकाश में सूर्य उगता है, उषाकाल में अनंत प्रकाश से किरणें फूटती हैं, उसी हरि करुणा के स्पर्श से उनके काव्य का जन्म होता है। अनंत शक्ति की इन प्रिय कृतियों से स्पर्धा करने का वे प्रयत्न कर रहे हैं, ऐसा समझकर वे उनसे क्षमायाचना करते हैं, 'क्षमस्व प्रभु, अपने इस बालक को क्षमा करो !' विविध रूपों में प्रगट होनेवाली, विश्व का निर्माण करनेवाली शक्ति की वे जयजयकार करते हैं।

तांबे अपनी 'नटेश्वराची आरती' में कहते है कि काल्पनिक एवं यथार्थ अथवा प्रतिभा एवं भाव के संगम से त्रिभुवनसुंदरी कला का जन्म हुआ है। कविता कवि-प्रतिभा की लीला है और जिस प्रकार विश्व का निर्माण ईश्वर की लीला है उसी प्रकार कविता भी उसकी लीला का एक रूप है। वे कहते है : 'एकोऽहं बहुस्यां प्रजायेय।' ऐसी स्फूर्ति मिलते ही सर्वत्र ऐसी अवस्था हो जाती है कि :

'अंबिका का पाकर संग
बहे कलकल भवगंग
रंग रँगे अनंग
सूर्य झिलमिलाए, चंद्र जगमगाए, तारे चमचमाएँ
रम्य गति प्रेम की ! जयजयकार है सान्त अनत की।'[2]

[नटेश्वर की आरती]

---

1. 'अनता तुझे गोल, तारे तुझे,
तुझे रूप ब्रह्माड सारे तुझे,
तुझी ही कृता रे मनमोहना
अहोरात्र गाई तुझ्या गायना।'

(अनत स्तोत्र)

2. 'अंबिका लाभताचि संगा
प्रसवे खळखळ भवगंगा,
अनगहि येई मग रंगा !
सूर्य झळझळति, चंद्रलखलखति, उडु लुकलुकति
रम्यता गति ही प्रेमाची ! जय जय सात-अनताची।'

(नटेश्वराची आरती)

वह मानते हैं कि जो श्रीमत्, ऊर्जित् तथा विभूतिमत् है, वह सारा इस आदिशक्ति द्वारा विलसित है और उसमें सृजनात्मक शक्ति निहित है। वे मदन, रति, मेनका और वारुणी की भी जयजयकार करते है। यद्यपि मदन कामदेव हैं, तो भी उन्हें नव निर्माण की प्रेरणा तथा स्फूर्ति देनेवाली रति भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। उसी का एक रूप है मेनका, जिसे वे प्रेम तथा आदर की दृष्टि से देखते हैं। वारुणी उन्हें सृजन की प्रेरणा देने वाली मायाविनी लगती हैं। वह न हो तो मूल शक्ति मे सृजनात्मक लहरों का निर्माण नहीं होगा और ब्रह्मांड का निर्माण भी नही हो सकेगा। वारुणी के 'उदय' को वे गाकर कहते हैं .

'देवि उदयोऽस्तु तव।
देवि विजयोऽस्तु तव।
जय उदे। जय उदे।
जय उदे स्वामिनी ।।' **[वारुणी स्तोत्र]**

शृंगार साम्राज्य के इस देवता में भास्करजी अनंत का स्वरूप तथा उसकी शक्ति का अनुभव पाते हैं। वे मानते हैं कि सृष्टि तथा मानव के रूप मे आदि शक्ति के विलास के सगुण साकार रूप सान्त स्वरूप के हैं, परन्तु इसी सान्त मे अनंत को ढूँढ़ लेना कलाकार का कार्य है। भास्करजी सृष्टि के आगे नतमस्तक होते हैं केवल उसके बाह्य सौंदर्य के कारण नहीं अपितु उसमें छिपे चिद्रूप के कारण।

**सर्वत्र सान्त-अनंत चिद्विलास :**

मानव तथा सृष्टि के आपसी संबंधों के विषय में भास्करजी कहते है :

"यह सपूर्ण विश्व एक सुसंबद्ध जाल है। मेरा और उसका बड़ा निकट का सबंध है। मैं ही अनेक रूपो मे उसमे विद्यमान हूँ। मेरा जन्म-जरा-मरण विशेष परिस्थिति, विशेष सस्कारो के अनुसार उनका जन्म-जरा-मरण है। मेरी क्षुधा तृष्णा विशेष परिस्थितियों के अनुसार उनकी क्षुधा, तृष्णा है। इसीलिए मै लता से समरस हो सकता हूँ। इसका यह अर्थ नही कि मैं स्वयं लता हूँ। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि अपनी भावनाएँ मैं लता आदि में भी महसूस करता हूँ।"

**[तांबे : व्यक्ती आणि कला**, पृ० 95-96]

वस्तुमात्र के साथ कवि का यह रिश्ता 'तृणाच्या पात्या' (तृण के पत्ते) कविता में अधिक स्पष्ट दिखाई देता है।

भास्करजी को सर्वत्र ईश्वर का साक्षात्कार होता है। जिस ऐश्वर्य का उपभोग मानव को प्राप्त है वहीं एक तृण का पत्ता भी भोग सकता है। तृण दल के

हरे-भरे ताज़ेपन में ईश्वर के सौदर्य तथा सामर्थ्य का आविष्कार दिखाई देता है। उसमें सृष्टि की संरक्षक एव संहारक शक्तियों का ज्ञान होता है। रौद्र तथा रम्य दोनों स्वरूपो में दिखाई देनेवाला निसर्ग अनंतत्व का ही रूप है। 'तृणाचे पाते' में भास्करजी इन दोनो स्वरूपों का समन्वय प्रस्तुत करते है। अनत तथा कल्पनीय में निहित आनद का विस्तार ही सौदर्य के रूप में यथार्थ में विस्तार पा रहा है। यह सौंदर्य तृण के पत्ते से लेकर सूर्य-चन्द्र तक फैला है।

'यद् यद् विभूतिमत्सत्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छत्वं मम तेजोऽशसंभवम्।'

यही विचार तांबे के हृदय में गहरा बैठा है। इसके विषय में उन्हें रत्ती भर भी शंका नहीं है। [मधुघट रसदर्शन, पृ० 198]

'सूर्यकिरणें तुम्हें नहलाती हैं
वरुण पिलाते हैं जल
तुम्हारे लिए वायु गीत गाती है
देखो कैसा यह नाता हैं!'[1] [तृण के पत्ते]

परमेश्वर से इस स्वरूप का नाता भास्करजी समझाते है। जिसकी रोम-रोम से जीवन-रस छलकता है, जो रसपूर्ण तेज का उद्रेक है, उस तृण के पत्ते को देखते समय उसके अन्त. सत्त्व का प्रगट रूप जानते समय, उसका वात्सल्य का रिश्ता सूर्य, वरुण आदि चैतन्य देवताओं से होने का प्रत्यय कवि-हृदय को होता है:

'जिस सत्ता के स्मरण से रोमांचित होता हूँ
उसमे मुझे भुला जाओ'[2]

अथवा,

'इसी में कृष्ण बजाते हैं मुरली
वामन कुचलते है बलि को

---

1. 'तुम्हापरि सूर्यकिरणि या न्हाणि
तुम्हापरि वरुण पाजि या पाणि
तुम्हापरि पवन गाइ या गाणि
बधा हे नाते'
(तृणाचे पाते)

2. 'भरे कापरे स्मरता सत्ता
झुलवि जा याते'

इसी में नरसिंह गर्जना करते हैं
डरो इनसे…"[1] [तृण के पत्ते]

तांबे ईश्वर की आदि सत्ता को मानते हैं। ये तृण के पत्ते ही दिव्य सत्ता के, वस्तु के मूर्तिमंत रौद्ररूप हैं, रोमांच पैदा करनेवाले रुद्रावतार हैं। इसीलिए कवि को उनसे आदरयुक्त भय लगता है और वे मानव से विनती करते हैं कि तृण के इस पत्ते को पहचानो, उसे पैरों तले मत रौंदो, उसे विनयपूर्वक अपनाओ।

डॉ. व. दि. कुलकर्णी का कहना है :

'रूढ़ अर्थों में यह निसर्ग कविता नहीं हैं। यह कविता सृष्टि से संवाद करने की अपेक्षा मानव सृष्टि को अभिप्रेत करने लगती है,…वह प्रतिक्रियात्मक बन जाती है। उसमें चिंतन के स्वर बनने लगते हैं। तृण के समान क्षुद्र लगने वाली सृष्टि की वस्तु के विभूतिमत्व तथा उससे अनभिज्ञ मानव के भीषण भवितव्य का वह (कविता) भयकंपित हृदय से विचार करने लगती है। उसकी अभिव्यक्ति में एक प्रकार की तीव्रता आने लगती है; आवेग आने लगता हैं; आवाज तीक्ष्ण होती जाती है; स्वर में आदेश का स्वर आने लगता है; गति तीव्र होती जाती है। अंत में वह अमर्यादित हो जाती है। सृष्टि की रुद्रशक्ति का विग्रह रूप उसमें से तीव्र आवेग के साथ उभर आता है और भयसूचक उद्‌गार के सहजोद्रेक में वह पूर्ण रूप ले लेती है, रुक जाती है।" [मधुघट रसदर्शन, पृ० 201]

श्री के० क्षीरसागर इस कविता के रहस्यवाद के संदर्भ में कहते हैं :

'पार्थिव सौंदर्य के दर्शन तथा चिंतन में लीन होते-होते अचानक कवि अपार्थिव तथा आत्मिक सौंदर्य की किरण के दर्शन कर लेता है। उसका बिम्ब अथवा उसका प्रधान संकेत (oblique hint) उसके काव्य में आ जाता है। यही वास्तविक साहित्य का गूढ़ गुंजन है।"

[टीका विवेक, पृ० 452]

तृण का पत्ता बनानेवाला ईश्वर एक महान कारीगर है, इस बात का साक्षात्कार भास्करजी को सृष्टि में सर्वत्र होता है और वे कहते हैं :

---

1. 'यांतुनि कृष्ण मुरलि वाजवितो
वामन बलिस यांतं दडवितो
यातुनि नारसिंह गुरगुरतो
भ्या रे याते…'

(तृणाचे पाते)

'पत्ते-पत्ते में अंकन-कतरन, रम्य बन्दनवार-सी
कही पास नही तूली-कैची, फिर भलाकैसे बनी !'[1]

अथवा

'श्यामल रात्रि, चंद्रकला में कशीदाकारी रुपहली
किन्तु हाथ मे नहीं सुई नही कही कोई।'[2]

परमेश्वर की लीला देखकर आश्चर्यचकित होने वाले भास्करजी मानव से कहते हैं :

'वृथाभिमान भुलाकर, नतमस्तक हो रे मानव
देख अनंत रमणीयता ! मन में तनिक शर्म कर !'[3]

[देखो कैसा यह कारीगर]

प्राकृतिक सौदर्य देखते समय भास्करजी मानव को भूलते नहीं। मानव को सृष्टि में अपना रूप देखने की स्वाभाविक इच्छा होती है यह समझाते हुए वे कहते हैं :

'हमारे हृदय की स्वाभाविक रचना ही ऐसी है कि वह केवल सृष्टि की रमणीयता में लीन होकर नहीं रह जाता। सृष्टि के भव्य, विशाल, उदात्त सौदर्य का वर्णन करते समय भी हम मानवजीवन को भुला नहीं सकते। लताओं और वृक्षों की ओर हम उन्हें अपना ही स्वरूप समझकर देखने लगते हैं। प्रकृति के विभिन्न रंग, गंध, चित्र-विचित्र आकृतियों की ओर हमारा ध्यान नही जाता। जिस प्रकार कवि वर्ड्स्वर्थ केवल प्रकृति को देखकर झूम जाता है वैसा हमारे साथ शायद ही कभी होता है।'

[वागवसत, प्रस्तावना, पृ. 13]

'तू कवण जगातील ललना' (तू किस दुनिया की ललना) की ललना इस सृष्टि के बाहर से आयी है। वह किस दुनिया से आयी है, यह जानने का प्रयत्न करते हुए भास्करजी पूछते हैं कि वह कवि वाण की सृष्टि से आयी है या गंधर्वों के विश्व से ? और 'तू कवणे मुलखा जाशी' (चली कौन-से देश) में वे इस मुल्क का स्वरूप स्पष्ट करते हैं। ऐसा लगता है कि इस जड़-सृष्टि के

1. 'कतरण ही पानिपानि रम्य झालरीपरी
तरी करांतरी कुठे नाही कातरी।'
2. 'काळी ही चद्रकळा रात्र ल्यालि, तीवरी
कशिदा ही रुपेरी, सुई कुठे करीं !'
3. 'लवव मान मानवा, वृथाभिमान सांडुनि
अनंत रम्यता पहा ! लाज रे मनो।'
(पहा हो कसा हा कारागीर)

'उस पार' वाले अनन्त का ही 'महाश्वेता' जैसा कोई रूप भास्कर जी के हृदय में कभी बिंधा होगा।

**मधुराभक्ति**

'पुनवेची शरद रात' (शरद पूर्णिमा की रात) में भास्करजी आकाश में प्रेमामृत के नशे में चूर तारानाथ, उसका तारों के साथ मादक प्रणय, तथा उसी समय पृथ्वी पर चल रहा 'मुरली घुमवा या महाराज' (मुरली की धुन छेड़ो महाराज) की लय पर कृष्ण और गोपियों के प्रणय का वर्णन करते है। यह कविता गोपियों तथा कृष्ण के प्रेम की, मधुर भक्ति की याद दिलाती है। ईश्वर को प्रेमी मानकर प्रेम-दीवानी हो जाने वाली नायिका का वर्णन मीराबाई, चैतन्य प्रभु जैसे भक्तों एवं सन्तों की याद दिलाता है।

'कवणे मुलुखा जाशी' (चली कौन-से देश) तथा 'रतले पर पुरुषासी' (मगन भई परपुरुष सग)—इन दो कविताओं के विषय में तांबे कहते हैं :

> ये कविताएँ एक दूसरे की पूरक हैं और साथ-साथ पढ़ी जानी चाहिए। पहली कविता मे आत्मा को इस विश्व से जोड़े रखने वाले प्रलोभनों का वर्णन है तथा दूसरी में दर्शाया गया है कि किस प्रकार बंधनमुक्त आत्मा इन प्रलोभनों के प्रति उदासीनता दिखा सकती है।"
> [**श्री ल. वा. वैद्य** को पत्र, दि. 26-2-1926]

यहाँ ईश्वर को परपुरुष मानकर उससे रति सुख माँगने वाली प्रेमिका प्रस्तुत की गयी है। परमेश्वर के पास वह जिस परदेश मे जा रही है, उसका वर्णन तांबे ने इसमें किया गया है। मार्ग में आने वाले मोहपाशों का भी वर्णन है। यह भवसागर पार करने जितना ही कठिन कार्य है। इसे पूर्ण करना एक बड़ा साहसिक कार्य है। यह जानते हुए भी वह परपुरुष-परमेश्वर की भेट के असीम आकर्षण से उस मुल्क को जाती है। दूर से ही अपने प्रियतम की बाँसुरी के स्वर सुनकर, सम्मुख गरजते हुए विशाल सागर की परवाह किये बिना ही वह अपनी टूटी-फूटी नैया उसमें छोड़ देती है। वह जानती है कि परदेस का वह प्रबल-कुसुमशर—उसका प्रियतम—उसे पंखों पर बिठाकर उस पार ले जाएगा। सारे ऐहिक बंधनों को तोड़कर उस पार जाने वाले जीव की स्थिति का वर्णन बाह्यतः शृंगारिक है। अंतरंग के गूढ़ भावों को व्यक्त करनेवाले संत साहित्य की 'राह देखकर नयन थके। कब आओगे पांडुरंग' या फिर 'अखियाँ तो झाई परी पंथ निहार-निहार' जैसो अवस्था का अनुभव यहाँ होता है।

'नादी लागुन चुझ्या चेटक्या' (माया में तेरी फँसकर ओ जादूगर),'घातली एकदा आता उडी' (कूद पड़ी अब), वैरिण झाली नदी' (बैरन बनी नदी), 'या वेली ये माझ्या रमणा' (इस पल आना मेरे प्रियतम) जैसी अन्य कविताएँ श्री ताबे की भावनाओं के माधुर्य से परिपूर्ण हैं।

**नववधू प्रिया :**

'नववधू' कविता बाह्य रूप से श्रृंगारिक कविता लगती है परन्तु वास्तव में गूढ़ भावनाओं से भरी हुई है। इसमें ईश्वर के ध्यान में दीवाने विरही जीव का वर्णन है। श्री के. क्षीरसागर कहते है कि इस कविता का अनुभव गूढ़ होते हुए भी दुर्बोध नहीं है :

> 'काव्यमय आविष्कार द्वारा अनुभव स्पष्ट होने के बाद भी गूढ़ रह जाने वाले आधुनिक मराठी साहित्य का यह एक उदाहरण है। विचारवान् चिंतनशील वाचक को यह अनुभव एक गूढ़, अपूर्व एवं अपार दृश्य के नजदीक ले आता है। इस कविता की सरलता तथा स्पष्टता इतनी भ्रामक है कि अनेक विद्वान इसे सचमुच ही नववधू संबंधी कविता समझते है। जीवरूपी वधू इहलोक का पीहर छोड़कर ईश्वर रूपी वर के पास जाते समय व्यर्थ ही व्यथित होती है। उसे पलभर का विरह, दुख सहना पड़ता है परन्तु उसका असली घर तो वही है—नेत्र को भिगों देने वाले अर्थ को भुलाकर भी अपार ध्वनि की यह कविता पढ़ी जा सकती है।'
>
> **[टीका विवेक**, पृ. 253]

संसार के मोहजाल में बँधी इस नववधू को जब उसका ईश्वररूपी प्रियतम अपने घर पर बुलाता है तब वह कहती है,

'भय लाज हरो मेरी।
धीरज दो, ले चलो दुल्हन को।
नेत्र भले आंसू से भरे हों
यह क्षण भर का है कष्ट, असली घर तो है वहीं पर।'[1]

**[नववधू प्रिया मैं]**

1. 'आतां तूच भय लाज हरी रे
धीर देवुनी ने नवरी रे
भरोत भरतिल नेत्र जरी रे
कळ पळभर मात्र खरे घर ते।'
(नववधू प्रिया मी)

श्रृंगार तथा भक्तिभावना का सुदर मिश्रण यहाँ मिलता है। श्रृंगार द्वारा भक्तिभावना व्यक्त करना संभव है यह बताते हुए भास्करजी कहते हैं :

> 'परमात्मा और भक्त के अनन्य प्रेम की अत्यन्त गूढ भावना तथा उन दोनो का मिलन अवर्णनीय है, अनिर्वचनीय है। उसे वाचा कैसे दी जाए ? श्लेप (अलकार) यहाँ अपरिहार्य है। परन्तु इस संसार में ऐसा क्या है जो इस अपूर्व भक्ति की बराबरी कर सके, जिसकी मदद से उस अपूर्व सुख की कल्पना की जा सके। भक्ति की उत्कटता, तल्लीनता एवं मोहिनी जैसे लक्षण जिस भावना में थोड़ी-बहुत मात्रा मे दिखाई देते हों ऐसी एक ही भावना मुझे मानव जीवन में दिखाई देती है; और वह है स्त्री-पुरुष के बीच रति का आकर्षण।'
>
> [डा. श्रीखंडे को लिखित पत्र दि. 7-8-34]

'अब तो बात फैल गई, जानत सब कोई', या 'लोक लाज खोई' कहकर एक स्त्री होते हुए भी देव रति का ही आश्रय लेने वाली सत मीरा बाई के अलावा अन्य संतो ने भी यह भक्ति भावना व्यक्त करने के लिए प्रेम रति का आश्रय लिया है। प्रसंगविशेष मे पुरुष होते हुए भी, अपने को प्रेमिका तथा ईश्वर को पुरुष मानकर अपूर्व रहस्योद्‌घाटन करनेवाले काव्य निर्मित किये गए है।

**परमेश्वर—एक माता**

तांबे ईश्वर को माँ के रूप में देखते है। वे माता पुत्र के अटूट संबंध का वर्णन करते हैं। शिशु रूप में मनुष्य को जन्म देने से पहले ही वह दयावान परमेश्वर उसकी सारी व्यवस्था कर देता है। तांबे की श्रद्धापूर्ण उक्ति है कि उस ईश्वर की हम सब सन्तान है, वह माता अपने बच्चों को अपने माया रूपी पंखों के आवरण से संरक्षण देती है।

'मैं जाता हूँ जहाँ कहीं भी
माँ वहीं तुम्हारी दया का
सदा सर्वत्र पहरा'[1]

यह कहकर वे 'ईश्वर की आज्ञा के बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता', इस प्रकार का विश्वास व्यक्त करते हैं। अपनी संतान को दूध पिलानेवाली तथा

---

1, '…जेथे जाई
तुझ्या दयेचा तेथे आई
सदा पहारा ठायी ठायी'

बार-बार चूमने वाली वत्सल तथा कृपालु अंत:करणवाली माता को देखकर तांबे कहते है—

> 'क्या ऐसी ही होगी त्रिभुवनजननी
> ऊपर से, मुझे सोया देखकर,
> सुख-दुख के मेरे स्वप्न देख
> क्या कौतुक सचमुच कर रही ?'[2]

यह कविता पढ़कर तांबे का उसपर प्रदर्शित विचार कि 'इस कविता में नि:संशय गहन रहस्यवाद है किंतु वह संवेदनपूर्ण है'—पाठक को सही लगता है। सृष्टि के 'उस पार' पहुँचने वाले तांबे यहाँ दिखाई देते है।

**मृत्यु—परमेश्वर का ही एक रूप :**

तांबे मृत्यु को भी विश्व के अनन्त सत्य स्वरूप का ही एक रूप मानते हैं; इसमें भी उन्हें अमरत्व ही दिखाई देता है। अत: मृत्यु से उन्हें भय नहीं लगता। 'घन तभी शुक्र बध राज्य करी', इस कविता के माध्यम से अपनी मृत्युविषयक भूमिका व्यक्त करते हुए वह कहते हैं :

> "हमारी आत्मा (जीव) नि:संशय ही प्रेम, प्रकाश और न्याय का रूप है। 'अस्ति, भाति, प्रिय' हमारे संकीर्ण निम्न अहं में बन्द है। अज्ञानतावश वह अपना मूल स्वभाव जो कि आनन्द है तब तक अनुभव नहीं कर सकती जब तक कि पक्षी के नन्हे बच्चे की तरह अपने परिवेश के कवच को, अंडे के आवरण को तोड़कर बाहर नहीं आ जाता, और ब्रह्मांड में अपने श्रेष्ठतम अस्तित्व को अनुभव नहीं कर सकता, जब तक कि वह समझ नहीं लेता कि वह स्वयं ही ब्रह्मांड को आच्छादित कर रहा है !
>
> "ये बाहेरी अंडे फोडुनि' (बाहर आ अण्डा फोड़कर) इत्यादि पर ध्यान दें। जीव की संकीर्ण परिसीमा के कारण दु:ख अथवा विषाद उत्पन्न होता है। अत: दु:ख हमारी अपनी निर्मिति है। 'कां बागुल रचितोस घरी' (क्यों काल्पनिक हव्वा रचते हो घर में)। ब्रह्मांड के असली रूप में इसका

---

2. 'अशीच असशील त्रिभुवनजननी,
बघत झोपल्या मज का वरुनी ?
सुखदु:खाची स्वप्ने बघुनी
कौतुकशी का खरी ?'
(निजल्या तान्ह्यावरी)

कोई स्थान नही है। वह केवल छाया में है, वास्तविकता में नहीं। छाया में भी आनन्द अपने आपको प्रगट करने के लिए सदा प्रयत्नशील होता है। 'घन तमी शुक्र बघ राज्य करी'—घने अंधकार में चमचमाता शुक्र राज्य करता है। इस विश्व की प्रक्रिया—नश्वर शरीर के आगे बढ़ते रहने की प्रक्रिया—हमें आश्वासन दिलाती है कि जीवन शाश्वत है; मृत्यु, दु:ख, विषाद, क्षणभंगुर हैं। और यद्यपि ऐसा लगता है कि वे हमपर हावी हो रहे हैं, वास्तव में वे हमें एक उच्चतर अस्तित्व की ओर ले जाते हैं। क्या मरण में ही अमरत्व नहीं है ? आनन्द केवल विश्व का मूल कारण ही नहीं है, वह उसको सहारा देकर ऊपर भी उठाता है। अन्तत: हम पुन: आनन्द की ओर आ जाते हैं ! 'हरि करुणा—आई पाही वाट रे—मना पसरोनि बाहु कवळण्या उरी' (हरि करुणा—माँ राह देखे—दोनों बाहु फैलाकर हृदय से लगा लेने के लिए !

[**श्री मायदेव जी को लिखित पत्र,** दि. 1-11-1920]

हरिकरुणा का महाद्वार मृत्यु है। वह माता वहाँ पर हमारी प्रतीक्षा कर रही है। अपने आँचल में छिपाकर माया का आवरण डालने के लिए रुकी है। ऐसी माँ के पास जाना ही मृत्यु को प्राप्त करना है। इस प्रकार के विचार भास्कर जी की 1920 के बाद की कविताओं में दिखाई देते है। मृत्यु सम्बन्धी यह एक विवेचन यहाँ वे प्रस्तुत करते है। यह कल्पना वर्ड्सवर्थ की—'आनन्द के घुमड़ते बादलों की तरह क्या हम प्रभु का घर छोड़कर यहाँ नहीं आ गये ?' वाली पंक्ति के समीप लगती हैं। इस घर में दु:खों का अम्बार हो तो क्या हुआ, 'उस' घर में सुख-शांति विराजित है। ऐसा लगता है, ऐसा बताते हुए तांबे के मन में 'वासांसि जीर्णानि यथा विहाय' की परिकल्पना रही होगी।

**महाप्रस्थान :**

सन् 1921 की बीमारी के समय भास्करजी ने मृत्यु को बड़े क़रीब से महसूस किया होगा। मृत्यु की छाया को देखते ही ज्वर से अस्वस्थ भास्करजी भारी आवाज में ज़ोर से बोले,

'दैत्य-सा छाती पर भार, सम्मुख रात अँधेरी
चल बुलावा आया है, क्यों पीछे देखे मुड़-मुड़कर'[1]

[महाप्रस्थान]

1. 'दैत्यशी छातिवर ठेली, तुजपुढे रात्र अंधारी,
चल जिवा, चालणे आले, कां उगा बघसी माघारी ?'

(महाप्रस्थान)

पास बैठे श्री ल. वा. वद्य जी ने यह लिखकर रख लिया। बीमारी की इस डाँवाडोल मनःस्थिति में महाप्रस्थान की कविताओं का प्रारम्भ है।

'आह्वान शृंग तव तीव्र' कविता में मृत्यु से प्रत्यक्ष भेंट का वर्णन है। अथवा वह आगे की भेट की पूर्वछाया है। बीमारी के इन दिनों में उनका मन ठिकाने पर न था। मृत्यु का 'भय' उन्हें नहीं लगा किंतु मन की स्थिरता पहले-सी न रही। एक पत्र में भास्कर जी लिखते हैं :

> 'ये सारी कविताएँ मुझे महाप्रस्थान की अस्पष्ट, दूर से आती हुई प्रतिध्वनि जैसी लगती हैं। मृत्यु का प्रश्न मेरे मानस में छाया हुआ था, और यद्यपि स्वास्थ्य लाभ होने के बाद वह शात हो गया था उसके अंकुर मेरे दिमाग़ में अकुरित होते रहे और किसी गम्भीर वाद्य के रुक जाने के पश्चात् भी गूंजते रहने वाले स्वरों की तरह उसकी प्रतिध्वनि मेरे दिमाग़ मे उथल-पुथल मचाती रही। [**श्री ल.वा. वैद्य को लिखितपत्र,** दि 26.2.24]

ताबे को मृत्यु पर विजय पाने की यह शक्ति उनके आस्तिक तथा वेदोपनिषदों द्वारा पाये गये संस्कारों से परिपूर्ण मनोवृत्ति के कारण मिली थी। परन्तु अपने परिवार के छोटे से विश्व में रहनेवाला उनके भीतर का पिता एवं पति रूपी जीव कुछ समय के लिए डर गया। अपना मन दृढ़ कर उन्होने मान लिया कि हर आने वाले जीव को आज या कल जाना ही है। परन्तु मृत्यु उन्हें धोखा दे गयी और श्रद्धा के आधार पर मृत्यु से आगे के विश्व का धुँधला-सा परिचय पाने के अवसर का उन्होने लाभ उठाया। परन्तु इसके बाद उन्होंने जो कविताएँ लिखीं, उनमें निहित विचार तथा विषय उनके पुराने रसिक वाचकों के लिए अनपेक्षित थे। प्रेम का, प्रेम के सार्वभौम रूप का वर्णन करने वाले तांबे से उन्होने इस "something not nameable" की अपेक्षा नही की थी। श्री वा. गो. मायदेव ने जब पत्र द्वारा भास्कर जी से इसके बारे में पूछा, तब उन्होंने लिखा :

> 'आज जब साहित्य-संभार मेरे चारों ओर पूर्ण विकसित गुलाब की पखुरियों की तरह बिखरा हुआ है; जब बीमारी, विपत्ति एवं दुर्बलता मेरे शरीर मे घर बना चुकी है; जब तूफान मे फँसी एक छोटी-सी नाव की तरह मेरी गृहस्थी इधर-उधर हिचकोले खा रही है; तब इसमें क्या आश्चर्य है कि मेरी दृष्टि दूर, जीवन से परे, उस महान् आत्मा पर केन्द्रित हो रही है।...मुझे उन लोगों की पुकार का भ्रम होता है जो मुझे अकेला छोड़कर चुपचाप आगे निकल गये हैं। अर्ध रात्रि की निस्तब्धता में धीरे-से गिरनेवाले पत्ते की तरह कोई बहुत पहले मूक हो चुकी आवाज

मुझे सुनाई देती है, चौंका देती है ! कोई पदचाप जो कौन जाने, कहाँ से आती है, मेरा पीछा करती है। किसी बन्द लिफ़ाफ़े की तरह वह आत्मा मुझे उत्तेजित करती है। रहस्य का बोझ मेरा आधार-स्तम्भ, मेरी रीढ़ की हड्डी तोड़े डाल रहा है ! तब क्या यह स्वाभाविक नहीं कि मैं कहूँ 'मधु मागसि माझ्या सख्या, परी। मधुघटचि रिकामे पड़ती घरी।' (मधु माँगते हो मित्र मुझसे। मेरा मधुघट तो कब से घर में ख़ाली पड़ा है।) अब यदि महाप्रस्थान' का बुलावा आ जाए तो क्या आश्चर्य है ? अब यदि मैं रहस्यवादी बन गया हूँ तो आप मुझे क्यों दोष दें ?''

[**श्री मायदेव को लिखित पत्र**, दि. 24-4-23]

**महाप्रस्थान की महत्त्वपूर्ण कविताएँ :**

महाप्रस्थान—अर्थात् जीव का इस विश्व को त्याग कर जाना। श्री वा. गो. मायदेव के अनुसार भास्कर जी ने इस विषय पर कुल नौ कविताएँ लिखी हैं—'महाप्रस्थान', 'आह्वान शृंग', 'आलो थाबव शिंग' (मैं आया रोको रण भेरि), 'जन पळभर म्हणतील (जन पलभर कहेंगे), 'घाबरू नको, बावरू नको' (मत घबराओ), 'निरोप वेताना' (बिदा के समय), 'मरणात खरोखर' (मृत्यु में सचमुच), 'उदार चन्द्र' (उदार चन्द्रमा), 'गाड़ी बदल ली' (गाड़ी बदल गई)।

मृत्यु की पुकार सुनकर मानव को इहलोक की सारी मोहमाया त्याग कर—आत्मा को परमात्मा की ओर—जाने की तैयारी करनी पड़ती है। पहले वह परेशान होता है, भयभीत होता है। वह जानता है इस यात्रा पर जाते समय कोई गठरी साथ नहीं ले जानी है। इस जग में ज्ञानरूपी दीप हैं और आगे अँधेरा ही है, यह जानकर सारे मोहपाशों से मुक्त होकर, उदास हुए बिना, वह चल पड़ता है। कुलस्वामिनी का स्मरण कर, आँखों में अमंगल अश्रु लाए बिना, यात्रा के लिए निकलने वाले जीव को रास्ते का पता मालूम करने की आवश्यकता नहीं होती। कवि उस जीव से कहता है :

'राह अगर न हो मालूम
पदचाप सुनो हे प्राण
धीरज रखो मन मे
साथ है जग का पालनहार।'[1] [महाप्रस्थान]

---

1. 'जरि वाट तुला नच ठावी
तीं ऐक पाऊलें प्राणा।
रें धीर धरी तू पोटी
सगि ये जगाचा राणा ॥'
(महाप्रस्थान)

परन्तु यह बुलावा बड़ी जल्दी में आता है। इतना कि 'रे मरण, छूटा जाए पल, बनूँ बावला' जैसी अवस्था हो जाती है। ऐसी भागदौड़ मचती है कि,

'साथ अन्न लेना मानव भूला
भूला सुराही डोरी भूला
भूला कपड़े नये पुराने
पाजामे-धोती को कौन पूछे !''[1] [आह्वान शृंग]

किसी भी विचार के लिए समय नहीं, यह ऐसा समय है। मित्रों से विदा लेने के लिए, हँसने-रोने के लिए किसी के लिए समय नहीं, फ़ुरसत नहीं। परन्तु तांबे कहते है कि इस जल्दी के बुलावे से घबराओ नहीं, डरो नहीं। विजयश्री पास है, ऐहिक के साथ चलने वाला यह युद्ध जीत लो। दूत की रणभेरी मुझे सुनाई दे रही है, प्रसंग तथा उसके महत्त्व को मैं समझ रहा हूँ, और चलने के लिए तैयार हूँ :

'नाट्यगृह में रौनक है
वह विविध जनों से सजा है
बिना मेरे उन्हें कितनी भी दिक्कत हो
देख ओ दूत, मैंने रंग वेष सब त्याग दिया।'[2]
[आलो, थांबव शिग]

तांबे ने ऐहिक के उस पार जाने के लिए निर्विकार वृत्ति से सारे स्वप्न विसर्जित कर दिए। मेरे चले जाने से दुनिया का कुछ रुकने-बिगड़ने वाला नहीं है। इस बात को वे समझ चुके थे। जो ऐहिक को भूलकर सारे मोहपाश तोड़कर आ नही सकता, उसे कष्ट है, मुझे नही। मैं तो चल पड़ा हूँ। जिस संसार

---

1. 'विसरे जन की हवी शिदोरी
विसरे ताब्या, विसरे दोरी,
विसरे वस्त्रे जुनि की कोरी,
मग तुमान धोतर कोण पुसे।'
(आह्वान शृंग)

2. 'जरि नाटकगृह हे गजबजले,
जरि नानाविध जन हे सजले
मजविण त्याचे कितीहि अडले,
पहा सोडिला रग; दूता'
(आलो थांबव शिग)

ने राम और कृष्ण की परवाह नही की वहाँ मैं क्या कहूँ ? क्षण भर को लोगों की आँखें नम होंगी परन्तु फिर सारे सगे-सम्बन्धी अपने-अपने कार्यों में व्यस्त हो जाएँगे। सृष्टि का क्रम रुकेगा नहीं। जीव (आत्मा) के मनोभाव व्यक्त करते समय तांबे कहते हैं, ऐसे क्षणभंगुर संसार के लिए किसी कुढ़न अथवा मोह के बिना जीव को हरि के भेजे हुए दूत के सम्मुख प्रस्तुत होना चाहिए। परन्तु ईश्वर के मिलन को अधिक महत्त्व देकर चलने वाले जीव को इस धरा के संसार के उपकारों को भी याद रखना चाहिए। तभी हम कवि को पृथ्वी, जल, तेज, वायु तथा आकाश से भावभीनी विदाई लेते हुए देखते हैं।

मृत्यु एक नया जन्म ही है। एक नये जीवन की शुरुआत। 'मारेगा मरण ही मरणाभावी। चिरंजीवी फिर बने।' मरकर जीने की यह कल्पना प्रस्तुत करते समय तांबे यह कहते हैं कि मृत्यु जीवन के लिए आवश्यक है। जिस चन्द्रमा ने अब तक साथ दिया, वह अगली यात्रा में साथ नहीं होगा, यह सोचकर उन्हें कष्ट होता है। सागरतल में रहकर हृदय की थाह ढूंढ़ने वाला शीतल चन्द्रमा नये सफ़र में साथ नहीं होगा, क्योंकि अब 'गाड़ी बदलने' का समय आ गया है :

'यथा काष्ठं च काष्ठं च समेयतां महादधौ।
समेत्य च व्यपेयातां तद्वत् भूत समागमः॥'

यात्रा करते समय गाड़ी में थोड़े समय की मैत्री और फिर दूसरी गाड़ी पकड़ने जैसा यह अनुभव है। ऐहिक की इस क्षणभर की मित्रता तोड़कर दूसरी गाड़ी में बैठकर परमात्मा के पास जाने वाली यह यात्रा है :

'गाड़ी ही बदली है, क्या इसमें भय संकट खेद
कैसा डर मरण का, न समझे रटकर भी वेद।'[1]

[गाड़ी बदल गयी]

नये देश-परिदर्शन को ले जानेवाली इस यात्रा में कुछ भी साथ नहीं ले जाना है, यह बताते हुए तांबे कहते है कि 'सहचरी सोच समझकर पाथेय देना।' यह सफ़र आखिर तक अकेले ही करना है। सारी तैयारी पूरी हो गयी है। यात्रा के लिए किस प्रकार से मृत्यु का बुलावा आएगा, कहा नही जा सकता। उसका स्वागत किस प्रकार करें, समझ में नही आता। वे कहते है :

1. 'गाडी वदलली यात कशाचें भय, संकट, खेद
का मग मरणा भ्यावे न कळे रटोनिया वेद।'

(गाडी वदल ली)

'कौन जाने किस रूप में आए वह घर
कैसे करूँ तैयारी ? कौन-सी बिछाऊँ दरी ?'[1]

[कैसे आए जाने वह]

**हृदय की वेदना :**

ऐहिक से विदा लेते समय, मन को तैयार करते समय 'जीव' को, आत्मा को वेदना होना स्वाभाविक ही है। मन छटपटाता है। परन्तु सन्तुष्ट हृदय से यात्रा के लिए चल पड़ना ही अच्छा है। 'कळा ज्या लागल्या जीवा' (जीव की वे वेदनाएँ) के संदर्भ में तांबे कहते हैं :

'इस कविता में उस मानव आत्मा की वेदना का वर्णन है जो अपने अभीष्ट की आकांक्षा तो रखती है परन्तु मोहमाया के बंधन से छुटकारा पाने में कठिनाई महसूस करती है। जो आगे निकल गये हैं, उनकी पुकार उसे सुनाई तो देती है। परन्तु जीवन के संगीत से वह बँधी रह जाती है। उस महान परमेश्वर के अलावा कौन मानव आत्मा के इस दर्द को समझ सकता है ? दुनियावालों की सहानुभूति जो कि वास्तव में उस ऊँचाई की ओर जाती हुई आत्मा की मनःस्थिति समझने में असमर्थ है, समुद्र के उस अथाह जल की तरह है, जिसकी एक बूंद भी पीने योग्य नहीं। वे शायद उसकी हँसी भी उड़ाएँ, परन्तु यदि वे उसके हृदय के पास आ सकें तो वे उससे ईर्ष्या भी करेंगे।" [**अप्रकाशित तांबे** पृ० 64]

एक ओर जीने की चाह और दूसरी ओर मृत्यु की पुकार के बीच फँसी हुई विकल और निराधार जीवात्मा की यह स्थिति है। यह अवस्था ऐसी है जब आसपास के लोगों द्वारा की जाने वाली दौड़-धूप निरर्थक लगती है। अपना पिछला जीवन अच्छी तरह बीत गया, यह संतोष पाकर ईश्वर को धन्यवाद देते हुए तांबे 'पूर्णाहुति' की भावना से हरिदर्शनार्थ चल पड़ते हैं।

**पूर्णाहुति :**

मृत्यु का अर्थ जीव का नाश नहीं। वह तो जीवनरूपी यज्ञ की अन्तिम तथा सम्पूर्ण आहुति है। मृत्यु की यह कल्पना तांबे के मन पर बचपन से पड़े

---

1. 'कुणास ठाऊक कवणे रूपीं येईल माझ्या घरी ?
कशी तयारी करूं ? कशी मी अंगणि घालू दरी ?'

(स्वारी कशी येईल ?)

हुए वैदिक संस्कारों की उत्पत्ति है। जीवन भर के धीर एव उदात्त सिद्धान्तों का ही यह एक रूप है। पूर्णाहुति के सन्दर्भ में श्री के. क्षीरसागर कहते है—

> 'यह कविता जितनी मृत्यु के संबंध में है उतनी ही तांबे जी के अन्तरंग में बसी भारतीय सस्कृति के चित्र के सम्बन्ध में भी है।'
>
> [**मधुघट रसदर्शन**, पृ. 222]

मृत्यु में पूर्णत्व समझने का भाव मन में होने के कारण इस मंगल प्रसंग को कैसे मनाया जाए, इस विषय में भास्करजी कहते है :

> 'मत लाओ नयनों में अश्रु
> नही है शून्यता यह, है परिपूर्णता, सद्गति।'[1]

इतने वर्षो तक खुद को धीरज देनेवाला कवि अब दूसरों को समझा रहा है, धीरज बँधा रहा है। आज मेरे अन्तिम समय में देवी शारदा अपनी वीणा पर सामवेद के मन्त्रों का घोष करे—ऐसी इच्छा वह व्यक्त करता है। भारतीय परम्परा के इस सुन्दर तथा गम्भीर चित्र के सन्दर्भ में श्री के. क्षीरसागर कहते हैं,

> 'एक मराठी कवि की यह इच्छा कि अन्तिम समय में स्वयं भगवती सरस्वती अपनी वीणा सहित वहाँ अवतरित हों, कितनी भव्य तथा उदात्त कल्पना है। कवि चाहता है कि शारदा मन्त्रोच्चार करे। उसकी मनोकामना है कि विश्व के प्राचीनतम संगीत तथा सामवेद की परम्परा का उसे साथ मिले। कवि की दृष्टि में श्मशान भूमि ही यज्ञभूमि है।"
>
> [**मधुघट रसदर्शन**, पृ० 223]

कवि अपनी चिता को यज्ञवेदी मानकर 'आरती करो' 'पुष्पांजलि अर्पित करो' जैसे वचन कहता है। 'स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवा' इत्यादि स्वस्तिवचन कहकर यज्ञ पूर्ण करने का अनुरोध अपने इष्टमित्रों से करनेवाले ताँबे यहाँ दिखाई देते हैं। शोक का वातावरण उत्पन्न करने के बदले आहुति दान का गम्भीर वातावरण निर्माण करनेवाली यह कविता सचमुच एक अप्रतिम भैरवी है।

---

1. कोणि आणू नका आसवें लोचनी
   छे ! न ही शून्यता ! पूर्णता, सद्गती।"

इस गूढ़ अनुभव का चित्रण मराठी कविता में कवि केशवसुत ने आरम्भ किया। परन्तु तांबे की रहस्यवाद की कल्पना अर्वाचीन मराठी कवियों की कल्पना से भिन्न स्वरूप की है। इसका कायण यह है कि आधुनिक मराठी पद्य का रहस्यवाद पश्चिम से प्रभावित है। परन्तु तांबे की रहस्यवाद की परि-कल्पना पाश्चात्य विचारों पर आधारित नहीं है। वे केवल अद्वैतवादी एवं चिद्विलासवादी हैं। यही कारण है कि तांबे की रहस्यवादी कविता अपार तथा अगाध अनुभूति से उत्पन्न होने पर भी दुर्बोध अथवा कृत्रिम नही लगती। उनकी अन्त:प्रतीति अपने आंतरिक अन्वेषण द्वारा प्रगट होती है।

भास्कर तांवे केवल ऊपरी सतह पर दिखाई देने वाली बात नहीं कहते, वे शाश्वत तत्त्व को प्रगट करनेवाले कलाकार हैं। सब वस्तुओं की तह में छिपे हुए आनन्दमय सत्व के वे पुजारी हैं। यह पूजा सृजनात्मक, प्रत्यक्ष, चित्रमय तथा भावनोत्कट है। भास्करजी की रहस्यवादी कविता अनुभूति के प्रकाश में तथा हृदय की आनन्दमय अवस्था मे लिखी गयी है।

# 5

# कविताओं के विविध स्वर

अबतक हमें तांबे की कविताओं में प्रेम एवं रहस्यवाद तथा अनंतत्व का परिचय मिला है। उनकी कविताओं में इन दो मुख्य स्वरों (भावों) के साथ-साथ अन्य अनेकों स्वरों (भावों) का विवरण भी हमें इस अध्याय में प्रस्तुत करना है।

प्रेम कविता के साथ वात्सल्य भाव की और छोटे बालक पर उनके स्नेह की कविता भास्करजी ने लिखी। बालक के लिए तथा बालक पर—दोनों प्रकार की कविताएँ—उन्होंने लिखीं। संख्या में बहुत कम कविताएँ लिखकर भी इस प्रकार की काव्य रचना में भास्करजी ने महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है।

भास्करजी ने बड़े सरल और प्रभावशाली ढंग से अपने प्रिय कवि ब्राउनिंग के नाट्य-गीतों जैसी रचनाओं के प्रणयन का प्रयोग किया। प्रो. पडित ने भास्करजी के नाट्य-गीतों के कारण ही उन्हें 'मराठी नाट्य गीतों का जनक' कहना उपयुक्त समझा। ये सब लिखते समय समाज एवं देश की स्थिति का सतत् अवलोकन करनेवाले भास्कर जी पर तत्कालीन वातावरण का भी प्रभाव पड़ा। इस कारण वे देश प्रेम की कविताएँ भी लिखते रहे। लोकमान्य तिलक और महात्मा गाँधी के स्वतंत्रता-संग्राम में वे सच्चे हृदय से एकरूप हो जाते थे।

भास्करजी की कविताओं में प्रकृति विविध प्रकार से परन्तु भाव पोषक एवं पार्श्वभूमि की तरह अवतरित होती है। जीवन का निरीक्षण करनेवाले भास्करजी सरस हास्य कविताएँ भी लिखते है। 'यह कैसी तेरी पुण्याई', 'कुर्यात् सदा मंगलम्' या 'बुड्ढी घोड़ी लाल लगाम' जैसी कविताओं में विसंगतियों की सत्यता को परखते हुए निर्मल हास्य निर्माण करनेवाले भास्करजी के दर्शन होते हैं।

जीवन को मांगल्य की दृष्टि से देखनेवाले कलाकार के इन विविध भावों का आलेखन इस अध्याय में है। तांबे की प्रसन्न एवं पवित्र प्रतिमा के दर्शन एक बार फिर यहाँ होंगे।

शिशु गीत :

कविताओं का पुत्रवत् वत्सलता में पोषण करनेवाले भास्करजी के शिशु-गीत संख्या में अधिक नहीं हैं। परन्तु उन्होंने अपनी काव्य सृष्टि में गृहस्थी, पत्नी और बच्चों को सम्मान स्थान दिया है। केवल कुछ ही शिशु गीतों के आधार पर आधुनिक मराठी काव्य सृष्टि में भास्करजी ने अनन्य सफलता प्राप्त की है। उनकी ये कविताएँ श्री वा. गो. आपटे की 'आनद' पत्रिका के लिए उत्स्फूर्त हुई थीं। इन कविताओं को पढ़कर श्री वा. ब. पटवर्धन लिखते है :

> 'तांबे जी की कविताओं में वात्सल्य भाव जो कि स्त्री के प्रेम का अत्यत पवित्र, प्रसन्न, तथा मधुर रूप है, विशेष रूप से प्रगट होता है। उनकी समस्त काव्य-रचनाओं में बच्चों के सहज-सुंदर स्वभाव के विषय में लिखी गयी कविताएँ अत्यंत सुंदर बन पड़ी हैं। 'आईकडे न्या' (माँ के पास ले चलिए), 'चिमणी' (गौरय्या)' 'आता गट्टी फू दादाशी' (अब मैय्या से कुट्टी), 'आनंद' जैसी उनकी कविताएँ सरल है, सादी हैं और शिशुवत् मधुर भी हैं। केवल ऐसी ही कविताएँ वे लिखते रहे होते तो भी महाराष्ट्र में उनकी कविताओं का एक स्वतंत्र अस्तित्व होता।''

समयोपरान्त भास्करजी को स्वतत्र और महत्त्वपूर्ण स्थान तो मिला ही किन्तु उनकी कविताओं के सन् 1920 के संस्करण की प्रस्तावना से उद्धरित श्री वा. ब. पटवर्धनन का उक्त अभिप्राय इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

सन् 1905 के वाद की अपनी कविताओं के संबंध में भास्करजी कहते हैं कि 'वे बच्चों के विषय में गायी गयी हैं।' 'निजल्या तान्ह्यावरी' (सुप्त बालक विषयक) जैसी कविता में, लोरी में, तत्कालीन समय का वातावरण दिखाई देता है। अँधेरी रात में, हौव्वा का भय दिखाकर, थोड़ी-सी अफ़ीम चटाकर बच्चे को सुलानेवाली, उसी प्रकार षष्ठीदेवी, जोखाई और सटवाई देवी की पूजा करनेवाली माता इन कविताओं में प्रस्तुत की गयी है। निद्रित शिशु का, उसे आँचल में छिपाकर, जागृत नेत्रों द्वारा पालन पोषण करनेवाली माता भास्करजी के हृदय में बसी 'त्रिभुवन जननी' की कल्पना को साकार रूप देती है :

> 'क्या ऐसी ही होगी त्रिभुवनजननी
> ऊपर से मुझे सोया देखकर

सुख दुख के मेरे स्वप्न देख
क्या कौतुक सचमुच कर रही ?'[1]

घुटने के बल चलनेवाले अपने बालक को दूध पिलाने के लिए अधीर माता की वत्सलता 'रुणभुण ये' कविता में भास्करजी ने साकार की है।

परस्पर विरोधी लगने वाली 'आईकडें न्या' (माँ के पास ले चलिए) तथा 'शिशुवंचन' जैसी करुण कोमल कविता पढ़ते समय विधुर पिता की दयनीय अवस्था से आँखें नम हुए बिना नहीं रहतीं। एक बार जब तांबे की पत्नी 'हल्दी कुमकुम' के लिए किसी के घर गयी थीं तब घर में सोया हुआ बालक नींद से जाग कर माँ के पास जाने के लिए रोने लगा। इसी प्रसंग का सामान्यीकरण करके ऐसे प्रसंग पर मातृहीन बच्चे के पिता के दुख को समझने का प्रयत्न किया गया है। बालक की इच्छा पूरी करने में आनेवाली अनेक कठिनाइयों का वर्णन करने के बाद पिता अंत में ईश्वर की शरण में आता है :

'बड़ी दूर बसा वह गाँव, जहाँ वह गयी है'
'मुझे माँ के पास ले चलो'—बच्चे की रट वही पुरानी'[2]
[माँ के पास ले चलिए]

पुत्र के दुख से दुखी, परन्तु ऊपर-ऊपर से संयम दिखानेवाले पिता का वर्णन 'शिशुवंचन' में भास्करजी करते हैं। 'माँ कब आएगी ?', हम उससे कब मिलेंगे ?' इन भोले-भाले प्रश्नों के उत्तर देते समय एक विधुर पिता के हृदय को होनेवाली वेदना साकार करते हुए भास्करजी कहते है :

'नन्हे बच्चे ये कोमल, विमल, निष्पाप
हे दीनदयाल, क्यों इन्हें दिया यह संताप !'[3] [शिशुवंचन]

---

1. 'अशीच असशील त्रिभुवनजननी,
बघत झोपल्या मजका वरूनी ?
सुखदुःखांची स्वप्ने बघुनी
कौतुकशी का खरी ?'
(निजल्या तान्ह्यावरी)

2. 'किति लांब मुला, ते गाव जिथे गेली ती'
'मज आई कडे न्या' गोष्ट एक पहिली ती'
(आईकडे न्या !)

3. 'चिमुकली मुले सोनुली विमल निष्पाप
हे दीनदयाळा, तयांस कां हा ताप'
(शिशुवंचन)

ईश्वर की शरण में जानेवाले पिता की वेदना वाचक के मन में बड़ा गहरा प्रभाव छोड़ जाती है। 'आनंद' पत्रिका के संपादक श्री वासुदेव आपटे के पुत्र आनंद के निधन से शोकातुर होकर भास्करजी के मुख से निकला 'उड़ गया हंस अब हाथ न आयेगा।'

> 'उडाला हंस' (उड़ गया हंस) कविता में वे बाद में लिखते हैं :
> 'मधुर स्वर जिस पिंजरे में गूंज कर मोहित जग को करता
> सूना खाली, गूंगा है अब नयनों को वेदना देता '[1]

परन्तु नारायण जी दुवे के पुत्र के निधन के समय 'वेदना वही समझ सके। जिसके हृदय में तीर गहरा चुभे,' कहनेवाले भास्करजी के ही ऊपर ऐसा दुखद प्रसग आ पड़ा। सन् 1908 में अपने पुत्र कमलाकर के निधन का शोक वे 'गत-काल' में व्यक्त करते हैं। अपनी उस समय की कविता के विषय में वे कहते हैं : 'जब मृत्यु मेरे दरवाज़े पर आकार मेरे बच्चे को छीन कर ले गयी तब वह (मेरी कविता) भी उद्विग्न, उदास, करुण हो गयी···।' इस सदमे से सँभालने में उन्हें काफ़ी समय लगा।

बच्चों के लिए लिखी गयी बाल-कविताओं में भाई बहनों के बीच रूठने-मनाने की, हँसी-ठिठोली की 'आता गट्टी फू दादाशी' (अब कुट्टी भैया से), 'लाजू नको ताई' (मत लजाओ दीदी) जैसी कविताएँ हैं। उन दिनों में लड़-कियों का विवाह छोटी उम्र में ही कर दिया जाता था। इन 'विवाह योग्य' कन्याओं की भावनाओं को भास्करजी ने 'दृष्ट' और 'माहेरची आठवण' (मैके की याद) जैसी कविताओं में व्यक्त किया है। आठ वर्ष की आयु में विवाहित, ससुराल से कुछ दिनों के लिए मायके आयी हुई बहन को छेड़नेवाले शरारती भाई का चित्र वे बड़ी सुंदरता से चित्रित करते हैं। एक साल से भी कम उम्र की अपनी बेटी के भावी वैवाहिक जीवन के स्वप्न सजानेवाली माता 'कुणि असेल ग' (कोई होगा री) में देखने को मिलती है।

शृंगार तथा हास्य रस का मिश्रण बच्चों को अच्छा लगता है, अतः इस प्रकार की कविताएँ भी भास्करजी ने लिखीं। हाव-भाव, चक्कर, नाच की संभा-वनावाली कविताएँ भी बच्चों को भाती हैं। 'रासमंडल', 'ते कोण गे आई' (वह कौन है माँ) इसी स्वरूप की कविताएँ हैं। सृष्टि का सुंदर चित्रण इन कविताओं की पार्श्वभूमि में आता है। 'ते कोण गे आई' में बालक का हवा के

---

1. 'मधुर रवें हा पंजर घुमतां मोहवि सान्या जगता
   सुना रिकामा मुका तिडिक दे नयनां आता बघता'
   (उडाला हस)

विषय में अनुभव व्यक्त करते समय उसमें हास्य, अद्‌भुत तथा भयानक रसों का मजेदार सम्मिश्रण प्रस्तुत किया गया है। साथ ही इस कविता में स्वर संगीत का भी ध्यान रखा गया है। बढ़ते हुए स्वर के साथ भय तथा विस्मय का संचार बढ़ता जाता है। 'चिवचव चिमणी छतात' एक संवादात्मक नाट्यगीत है, जिसमें काव्यविषय सटीक शब्दों में व्यक्त किया गया है।

तांबे ने अपनी पसंद के कवि ब्राउनिंग की 'पाइड पाइपर ऑफ हैमलिन' कविता का सफल रूपान्तर 'पुंगीवाला' नामक कविता में किया है। तांबे की प्रतिभा की उड़ान का यह एक उदाहरण है। हास्य तथा अद्‌भुत रस से सजी इस अजब दुनिया मे बच्चे तल्लीन हो जाते हैं।

**नाट्य गीत :**

भास्करजी के नाट्यगीत मानव जीवन के किसी भी रमणीय क्षण का बड़ी कुशलता से शब्दांकन करते हैं। 'रोखुनि मज पाहू नका' (आँख गड़ाकर मत देखिए मुझे) में विवाह योग्य युवा कन्या के नेत्र उसके मन की भावनाओं को शिकायत के रूप मे भावी पति के सम्मुख व्यक्त करते है। 'आग उगा लावू नका' (मत आग भड़काओ)कहकर यौवन की असह्य दाह व्यक्त करते हुए बड़े विस्मय-कारी रूप से कविता का अंत किया गया है।

तांबे जी का नाट्य गीत लेखन बड़ी सहज, स्वाभाविक रीति से होता गया। जीवन के एक रसिक भाषाकार तथा मार्मिक निरीक्षक के रूप में उन्हें देखा जा सकता है। 'परचित्त प्रवेश' की कला उन्हें सहज साध्य होने के कारण वे तादात्म्य सँभाल सकते है और साथ ही अलिप्त भी रहते हैं। यह उनकी प्रतिभा की विशेषता है। मानव से प्रति प्रेमभावना रखनेवाले भास्करजी अपने नाट्य-गीतों द्वारा स्त्री-पुरुषों की भावनाओं की विविध छटाओं का बड़ी कोमलता से दर्शन कराते हैं। अद्‌भुतरम्य तथा गहन-गूढ़ प्रेम का अनुभव प्रदान करते है।

ये नाट्यगीत अलग-अलग तरीको से आकार ग्रहण करते है। 'पन्नास वर्षानंतर' (पचास वर्षों बाद) जैसे नाट्यगीत में प्रेमभंग का अनुभव प्रस्तुत किया गया है। 'पन्नास वर्षानंतर' तथा 'वाटेच्या वाटसरा' (राहगीर) कविताएँ एकमुखी सवाद गीत है, जिनमें असहाय, करुण प्रेमानुभूति व्यक्त की गयी है। 'वाटेच्या वाटसरा' में बचपन में साथ खेलनेवाले जिस मित्र को प्रेम का वचन दिया था, वही जब प्रेमिका के घर अतिथि बनकर आता है तब उसके हृदय की असह्य घुटन को व्यक्त करते हुए भास्करजी लिखते हैं :

'मन के बंधन ना जानूं मित्र
राह के पथिक, जाओ जाओ दूसरे गाँव'[1] [राहगीर]

बिना डगमगाये वह विनती करती है :

'अनजाने कभी वचन निकला था मुख से
भरी गृहस्थी मेरी, ना बिगाड़ो चीख से'[2] [राहगीर]

इन दो कविताओं के अलावा 'का रे जाशी मज त्युजनि' (क्यों जाते हो मुझे त्याग कर), 'अवमानिता', 'उगवला आज फिरुनि का दारि' (द्वार पर क्यों फिर से आए आज) इत्यादि कविताओं मे नारी का हृदय टटोलनेवाले भास्करजी 'हृदय सांग चोरिले कशास' (बोलो क्यों चुराया मन), 'कुपित अंगनेप्रत', 'म्हाता-या नवरदेवाची तक्रार' (बूढ़े दूल्हे की शिकायत) अथवा 'पन्नास वर्षानंतर' जैसी कविताओं में वे पुरुषों की भावनाओं के विषय में लिखते हैं। प्राध्यापक भ. श्री. पंडित कहते हैं :

'तांबे जी की प्रतिभा का झुकाव वस्तुनिष्ठता की ओर है। कवि की स्वैर कल्पना को जितना व्यापक क्षेत्र तथा जितना व्यापक अवसर वस्तु-निष्ठ कविता में मिलता है, उतना व्यक्तिनिष्ठ कविता में नहीं मिल पाता इस समय वस्तुनिष्ठ समीक्षा का अधिक बोलबाला है। उसे भी तांबे के नाट्यगीतों से परामर्श ले लेना चाहिए।'

[**तांबे आणि त्यांचे गीतिकाव्य**, पृ० 117]

वर्णन की अपेक्षा सवाद तथा हावभावों की मदद से तूली के दो-चार आघात से ही तांबे जी सजीव व्यक्ति चित्र साकार कर देते हैं। इसमें वे कवि केशवसुत से भी अधिक प्रभावशाली लगते है।

स्त्री-पुरुषों के, उनकी विविध भावनाओ के ये सजीव शब्दचित्र चिरजीवी हैं। इसमें सामर्थ्यवान शब्दों ने अरूप को भी रूप दिया है, मौन को वाणी दी है। शब्द तथा स्वर, दोनो को समान महत्त्व प्रदान कर अभिनय द्वारा भाव व्यक्त करनेवाले 'आकृतिबंध' का भास्करजी ने बड़ी सफलता से उपयोग किया है।

1. 'जिवाचे लागेबांधे ठाव नाहीं सख्या भावा;
वाटेच्या मुशाफरा, जाईं जाईं दुज्या गावा।'
(वाटेच्या वाटसरा)

2. 'असावधपणी शब्द गेला कधी-काळी,
भरल्या संसारात नको फोडूं रे किंकाळी !'
(वाटेच्या वाटसरा)

विधवाओं के विषय में लिखी गयी उनकी कविताओं में भी यही बात दिखाई देती है। ये रचनाएँ विधवाओं के मन की व्यथा को बड़ी प्रामाणिकता से चित्रित करती हैं। और तब ये पाठक-मन पर अपेक्षित प्रभाव छोड़ने में समर्थ हैं।

मध्ययुग में जब छोटे-छोटे राज्यों का बड़ा बोलबाला था, तांबे ने पराक्रम से ओतप्रोत 'प्रणय' साकार करने वाले गीत लिखे। 'बिजली जशी चमकें' (बिजली-सी चमके), 'प्रीतिचा वास', (प्रीति की खुशबू), 'मुसाफिर आम्ही' (मुसाफिर हम) जैसे नाट्यगीत इस श्रेणी में आते हैं। 'राजकन्या आणि तिची दासी' (राजकुमारी और उसकी दासी) जैसी सरस संवाद-कविता इसी प्रकार के वातावरण को रेखांकित करती है। अपनी कुशल लेखनी से भास्करजी ने इस कविता में दो पात्रों के लम्बे सवाद द्वारा कथा-कथन, पात्र-स्वभाव-निरूपण तथा भाव-प्रदर्शन बड़ी कुशलता से सपन्न एवं सिद्ध किया है। इस कविता को पहले उन्होंने गंभीर स्वरूप देने का विचार किया था परन्तु अंत में उन्होने इसे एक हल्की-फुल्की कविता के रूप में प्रस्तुत किया। इस कविता का राजकुमार ही दूसरी कविता में 'फेरीवाला' बन जाता है। इसमें भी संवाद बड़े सटीक एवं सुंदर बन पड़े हैं। राजकुमारी को 'परवल बताकर जाव' कहनेवाला 'जमादार' इसी मध्ययुग के वातावरण से लिया गया है।

अपने प्रिय कवि रॉबर्ट ब्राउनिंग की अंग्रेजी नाट्य-कविताओं को तांबे ने बड़ी सफलता से मराठी में रूपान्तरित किया। श्री भ. श्री. पंडित ने बड़े गर्व के साथ भास्करजी को 'मराठी नाट्यगीतों का जनक' कहकर सम्मानित किया। परचित्त-प्रवेश तथा तादात्म्यता की प्रतिभा तथा सूक्ष्म एव भेदक कल्पना शक्ति के कारण तांबे को यह स्थान प्राप्त हुआ है। श्री पडित के मतानुसार मंदिरों की जो नाट्य तथा संगीत कला मध्ययुग में दरबार में तथा आधुनिक युग में किर्लोस्कर के संरक्षण के कारण रंगमंच पर जा पहुँची, उसका अधिक ग्राह्य एवं सुसंस्कृत रूप आधुनिक मराठी कविता के क्षेत्र में तांबे ने प्रस्तुत किया।

**राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत कविताएँ :**

तांबे के काव्य-विश्व के विविध स्वरों में एक स्वर राष्ट्रीय-भावना का भी है। परन्तु कविता को वे 'साधन' नहीं मानते थे अत: उसमें प्रचार-प्रसार का अंश नही है। उनकी देशभक्ति की भावना के उद्रेक को ही काव्य रूप प्राप्त हुआ है। मातृभूमि के लिए कुछ कर सकने की अपनी असमर्थता को वे 'मातृभूमिप्रत' कविता में इस प्रकार व्यक्त करते है :

'मेरे अन्य बंधु, तेरे सुपुत्र, इस देश की स्वतंत्रता के लिए लड़ रहे हैं, त्याग कर रहे है। परन्तु मैं केवल अपने मालिक को खुश करने के लिए कार्य करनेवाला तेरा एक कुपुत्र हूँ। उन सुपुत्रों पर प्रेम लुटाने वाली हे मातृभूमि क्या मुझे भी अपने प्रेमभरे हाथ से सहलाओगी ?'

मूर्ख राजा-महाराजाओं की मिजाज पुरसी करते हुए, अनिच्छा से देशी रियासतों के वातावरण में दिन गुजारने वाले, देश के लिए कुछ न कर सकने के विचार से दुखी, भास्करजी अपनी मातृभूमि से पूछते है :

'फाँसी पर चढ़ने के लिए तत्पर अपने पुत्रों को देखकर तेरा हृदय भर आया। मैं जब नर्क में जाऊँगा तब माँ, क्या तेरी आँखें नम होंगी ?'

इस प्रकार की भावनाएँ व्यक्त करनेवाली भास्करजी की कविताएँ संख्या में अधिक न होने पर भी उनमें प्रतिभा, प्रखरता तथा प्रामाणिकता में कोई कमी नहीं दिखाई देती। प्रारंभिक कविताओं में वे अंग्रेज अधिकारियों की व्यापारी घटोत्कच-माया का वर्णन करते हैं। 'चिरंजीव कौन' में वे देशभक्तों को आदर-पूर्वक प्रणाम करते हैं। स्वराज्य-संपादन का कार्य अधूरा छोड़कर चल बसने-वाले लोकमान्य तिलक के निधन पर तांबे जी ने लिखी हुई 'विलापिका' उत्कट भावनाओं से परिपूर्ण है। तिलक-युग के अंत और गाँधी-युग के प्रारंभ के काल मे, जलियाँवाला बाग़ की घटना से क्रुद्ध और आहत जनता की भावना को उन्होने 'रुद्र को आवाहन' में व्यक्त किया है। यहाँ तांबे संहारक शक्तिरूप भग-वान शंकर के अतिभयंकर रुद्रावतार का ही आह्वान करते हैं। उनके इस कथन का कि 'मेरा आधार समाज के अंतर्बाह्य अवलोकन पर निर्भर है', यहाँ प्रत्यक्ष तौर पर उल्लेखित है। इस आह्वान में वे कहते हैं कि नवनिर्मिति के लिए विश्वसंहार की आवश्यकता है। अत: वे रुद्र का आह्वान करते है कि वह विनाश का रूप लेकर त्रिशूल की खनखनाहट, डमरू का प्रलय-निनाद लेकर शंख फूंकते हुए किसी घनप्रलय की तरह आयें और इस पतित, अधर्मी, अनाचारी, पृथ्वी की रक्षा करें।

फ़कीर वृत्ति के स्वामी सत्यदेव की बुलद आवाज से प्रभावित होने वाले तांबे कहते है कि 'ऐसो का कोई क्या बिगाड़ लेगा ?' बाद मैं उन्होने स्वयं ही इसका अनुवाद 'ऐसन को का कोऊ करे' के रूप में किया। ऐसे देशभक्तों को देखकर वे कह उठते हैं : 'धन्य है माता तेरी कोख, दैन्य न तेरा क्यों भागे दूर।' महात्मा गाँधी के कर्तृत्ववान व्यक्तित्व से तथा उनके 'सत्य, अहिंसा, शांति' के आदर्श से भास्करजी बड़े प्रभावित हुए थे। असहयोग आंदोलन का प्रचार करते हुए संपूर्ण देश को हिला देने वाले, सर्वत्र संचार करनेवाल

महात्मा जी की विशुद्ध विचारधारा, उनकी धाराप्रवाह अंग्रेजी (शैली तथा वक्तृता) एवं उनका पूर्ण सांस्कृतिक व्यक्तित्व भास्करजी को अत्यत प्रिय था। इसीलिए उन्होंने यह कविता लिखी : 'अब तुम जयजयकार करो।'

'हे भविष्य के दिव्य शिल्पी
कौन अवरोध करेगा ? कौन सागर रोकेगा ?'

भास्करजी महात्मा गाँधी को 'नवराष्ट्र के निर्माता' कहकर संबोधित करते हैं। जब उन्हें लगा कि गाँधीजी का आंदोलन धीमा पड़ने लगा है तब वे दुख से कह उठे 'ऐसा लगा नाथ, अब नीचे आ रहे आप।' इस काल में तांबे महात्मा गाँधी से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने खादी पहनना आरंभ कर दिया। महात्मा जी में उन्हें प्रह्लाद, चिलया, हरिश्चंद्र सभी दिखाई दिये और उन्होंने कहा 'बाँझ नहीं तू माता मेरी।' महात्माजी पर उन्होंने 'राजा समझ न हा गुजराथी' तथा 'कृष्ण योगीश' कविताएँ लिखीं।

राष्ट्रीय भावना का विचार करते समय भास्करजी की आँखों के समक्ष राजपूतों तथा मराठों का इतिहास आ जाता है। वाल्मीकि उन्हें एक अलग ही स्फूर्ति देते हैं और फिर 'मरण में सचमुच जग जीता है' की निर्मित होती है। फिर तांबे कुल की वीरबाला रानी लक्ष्मीबाई पर ओजपूर्ण पोवाडा (कुछ-कुछ क़व्वाली के स्वरूप का एक प्रकार का मराठी समूह गान) लिखा जाता है। वीर भगतसिंह के बलिदान का वर्णन 'देशद्रोह या राजद्रोह' जैसी कविता द्वारा व्यक्त होता है। साम्राज्यवादी अंग्रेजों के प्रति सारा उपहास 'साम्राज्यवादी' में प्रगट होता है। इन सभी कविताओं में भास्करजी के हृदय की देशभक्ति की भावना स्पष्ट झलकती है। भावना चाहे प्रेम की हो, वात्सल्य की, अथवा देश-भक्ति की, भास्करजी अपने भावनोद्रेक में समरस होकर तादात्म्य पाते हैं। हृदय में टीस उठती है और काव्य का जन्म होता है।

**सृष्टि को समझने वाले कलाकार :**

भास्करजी की कविताओं में प्रकृति के अनेक रूप देखने को मिलते हैं। वर्ड्सवर्थ उनके प्रिय अंग्रेज़ी कवि थे। परन्तु प्रकृति विषयक कविता या किसी रमणीय दृश्य को देखकर केवल उसका वर्णन करने वाली कविता लिखना

1. 'या भविष्याचिया दिव्य कारागिरा
कोण रोधील ? दे कोण कर सागरा ?'
(कोण रोधील ?)

भास्करजी की कविता शैली में नहीं बैठता। उनकी शैली मे प्रकृति का अलग स्थान नहीं है परन्तु हृदय पर होने वाले उसके प्रभाव की छाया सर्वत्र है। यही कारण है कि भास्करजी की कविताओं मे प्रकृति का वर्णन मानवी हृदय को, उसकी भावनाओं को उठाव देने के लिए पूरक तथा पोषक के रूप में आता है। प्रकृति तथा मानव के बीच तादात्म्य, एकरूपता इससे साध्य होती है। प्रकृति से संवाद संभव होता है।

'रासमंडळ गोपीचन्द चन्दन' जैसी कविता में सूर्यास्त का सुन्दर हू-ब-हू वर्णन करके वे सुन्दर स्वभावोक्ति प्रस्तुत करते है। अपनी कविताओं अथवा नाट्य-गीतों मे भावनाओं को प्रस्तुत करने के लिए वे सृष्टि के रम्य दृश्यों का अलंकारों के समान उपयोग करते हैं। सृष्टि के दर्शन से प्रेरणा पाकर हृदय में उठने वाली उनकी कल्पना उनकी कविता में बिलकुल अनुरूप होकर सज जाती है। सृष्टि की सुन्दर कल्पना तथा हृदय की भावना के प्रवाह में एक प्रकार का साहचर्य दिखाई देता है। कभी किसी कविता में सृष्टि की संरक्षण शक्ति का वर्णन करने वाले भास्करजी 'तृणाच्या पात्या' जैसी कविता में प्रकृति की संहारक शक्ति का प्रत्यय भी दे देते हैं। सृष्टि में चैतन्य देखने के अलावा वे उसके पीछे का विश्व रूप भी पहचानते है और कहते है .

'वृथाभिमान भुलाकर नतमस्तक हो रे मानव
देख अनन्त रमणीयता ! मन में शर्म कर।'[1]
[देखो कैसा यह कारीगर]

### भास्करजी की हिन्दी, उर्दू, संस्कृत कविताएँ :

संस्कारक्षम कच्ची उम्र में 'तुलसी रामायण' जैसे हिन्दी ग्रन्थों का भास्करजी ने पारायण किया था। हिन्दी भाषा द्वारा ही साहित्य से उनकी सर्वप्रथम पहचान हुई। इसीलिए कबीर, सूर, तुलसी, मीरा के साहित्य से परिचय बढ़ाने वाले भास्करजी की 'शारदा स्तवन' हिन्दी में लिखने की इच्छा हुई। 'स्त्री हृदय रहस्य' उन्होंने सर्वप्रथम हिन्दी में ही समर्थ रूप से व्यक्त किया। महात्मा गांधी के कार्यो का सम्मान करने के लिए 'अब तुम जयजयकार करो' जैसी रचनाहिन्दी में प्रस्फुटित हुई। पद्मावर्तनी, भृंगावर्तनी, हरीवर्तनी इत्यादि छंद प्रकार वे हिन्दी में ही उपयोग मे लाते है। दीवाने प्रेम का प्रदर्शन करने के लिए 'याद हमारी रखना। खुश रहो, सलामत रहो ! और क्या

1. 'लवंवमान मानवा वृथाभिमान साडुनी,
अनत रम्यता पहा, लाज रे मनी।'
(पहा हो कसा हा कारागीर)

कहना।' कहने वाले तांबे कभी-कभी 'हाय री मुहब्बत ! आज हुआ सब सपना' कहते हुए प्रेम की विफलता भी स्पष्ट करते हैं।

शृंगार के सम्बन्ध में एक जगह वे उर्दू में लिखते हैं :

'तुझे है रब्त खारों से तो सेहरा कर लो खारों का,
नसीहत कर न बुलबुले को, उसे तो गुल ही प्यारा है।'

अपनी उर्दू कविताओं में 'क्या वेनजीर तेरी यह तलवार नजर है' अथवा 'दिल की हमारे हालत हमीं से पूछते हो' कहनेवाले तांबे मयखाने का वर्णन करते समय अपने सारे मराठी संस्कार भूलकर उर्दूमय होकर कह उठते हैं :

'मयख्वार पर हरारत हरकतें तुम्हारी
नाचीज लेकर बोतल महफ़िल में बैठते हो।'
[दिलकी हमारे हालत]

'जाती हो तो जाओ' जैसी हिन्दी कविताओं से प्रीति की जो उन्मुक्तता व्यक्त होती है, वह मराठी में प्रदर्शित करना कठिन है। भास्करजी की हिन्दी तथा उर्दू भाषा शैली जानदार है और भाषा तथा शैली की विशेषताओं पर उनका प्रभुत्व है।

तांबे कभी-कभी संस्कृत में भी लिखते थे। खासे साहेब उर्फ़ सदाशिवराव पवार को राज्याभिषेक के अवसर पर भास्करजी ने अभिनन्दन के रूप में संस्कृत में उपदेश दिए। ग्वालियर के राजा जिवाजीराव शिंदे का अभिनन्दन करते समय उन्होंने राजा के कर्त्तव्य और सत्त्व की जानकारी दी। राजा को वे विष्णु का ही एक अंश मानते थे।

मराठी में अक्षरगण वृत्तात्मक कविताएँ भास्करजी नहीं लिखते थे परन्तु उसपर भी उनका कितना प्रभुत्व था यह उनकी प्रसादपूर्ण तथा श्रुतिमनोहर शैली की संस्कृत कविताओं से स्पष्ट हो जाता है। संस्कृत के साथ उन्हें बाङ्ला का भी ज्ञान था। उन्होंने तरुलता दत्त की बाङ्ला कविताओं काअनुवाद भीश्री बा. अ. देव के लिए किया था। रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कविताएँ उन्होंने पढ़ी थीं। इनमें 'गार्डनर' संग्रह उन्हें विशेष प्रिय था।

'शारदा स्तोत्र', 'वारुणी स्तोत्र', 'अनंतस्तोत्र', 'जय वाल्मीकि' आदि भास्करजी की स्तोत्र रूपी कविताएँ है। स्तोत्र को वे गेय कविता का ही रूप समझते थे।

इन विविध कविताओं द्वारा भास्करजी तांबे की जीवन की ओर देखने की श्रद्धा तथा मांगल्यपूर्ण निर्मल एवं निरामय दृष्टि स्पष्ट होती है। जीवन आनन्द के लिए है, यह वे बार-बार कहते हैं। उनकी प्रसन्न पावन प्रतिभा उनके काव्यों द्वारा शब्दों को स्वर देकर यही सन्देश रसिक पाठकों तक पहुँचाती है।

# 6

# तांबे की कविता का स्वरूप तथा संगीत

भास्करजी की कविता उनके जीवन की सहचरी है। आयु के बढ़ने के साथ-साथ, उनकी कविता विकास पाकर, फल-फूलकर समृद्ध होती गयी। अपनी कविता के बारे में वे वा. गो. मायदेव को लिखते हैं :

> 'मेरी कविता मेरे जीवन के साथ-साथ विकास पाती गयी यह उसकी एक विलक्षण विशेषता है। जब मेरी आयु पन्द्रह वर्ष से कम थी, तब वह केवल बड़बड़ाती थी। विवाह से पहले युवावस्था की मेरी कविताएँ लगभग अश्लील थीं और इनमें से कई तो मैंने जला भी डाली। विवाहोपरान्त तथा बच्चों के पैदा होने तक वह प्रेम विषय पर केन्द्रित रहीं। उसके बाद वह बच्चों के लिए गाती रही। जब मृत्यु मेरे दरवाजे पर आकर मेरे बच्चों को छीनकर ले गयी तब वह भी उद्विग्न, उदास, करुण हो गई। जीवन की यथार्थता से समझौता पुनः प्रीति की कविताओं की एक ताजी फ़सल दे गया; जो अधिक गहन, गंभीर और सर्वव्यापी प्रकृति की है।...' दि. (24-4-1923)

**कविता का विकास** :

स्कूली जीवन में प्रगट हुई तांबे की काव्य-शक्ति का उनके पोषण शिक्षक श्री लेले ने बड़ी ममता से किया। प्रारम्भिक काल में इस कविता में कवि मोरोपन्त का प्रभाव दिखाई देता है। अनुवाद करने की प्रवृत्ति भी इस काल में दिखाई देती है। इस काल में उन्होंने केवल प्रकृति-वर्णन की ही कविताएँ लिखी। खासे साहेब को पढ़ाने के निमित्त से 'चिव चिव चिमणी छतात' (चूँ चूँ चिड़िया छत पर) जैसे बालगीतों की रचना, ब्राऊनिंग के 'पाइड पाइपर' का मराठी अनुवाद अथवा रूपान्तर वे करते है। विवाह से पूर्व प्रेम

का अनुभव न होने के कारण उस समय उन्होंने प्रेम-कविताएँ नहीं लिखीं। जो लिखीं, वे उन्हें अश्लील लगीं, जिन्हें उन्होंने स्वयं ही नष्ट कर दिया।

विवाह के पश्चात् उनकी कविता में सम्पूर्ण परिवर्तन आया। पत्नी-प्रेम की अन्तर्मुखी कविता वे लिखने लगे। नारी रूप में प्रगट होनेवाली सौंदर्यानुभूति का अनुभव कर उन्हें नारी के आदर्श रूप का ज्ञान हुआ। प्रेम कविता का प्रवाह बाद में वात्सल्य प्रेम की ओर मुड़ गया। अचानक काव्य-गंगा सूखने लगी। प्रवाह खंडित होने लगा।

सन् 1920 के आसपास पुनः उनकी प्रतिभा में नये अंकुर फूट पड़े। ऐसे भी विचार मन में आते थे कि क्या और कितना लिखा जाए, समझ में नहीं आता था। भास्कर जी कहते है :

> 'मैं नहीं जानता कैसे परन्तु पिछले कुछ दिनों से अचानक ही काव्य-देवता जागृत हो उठा है, और सैकड़ों कविताएँ मेरे दिमाग में रोज़ ही उदित होती हैं, सैकड़ों खामोश हो जाती है, केवल कुछ ही शब्दों द्वारा प्रगट हो पाती हैं। [श्री मायदेव को लिखित पत्र, दि. 24-9-1920].

पुनः एक बार वे स्त्री-प्रेम का अधिक प्रौढ़ एव गम्भीर चित्रण करते हैं। इन कविताओं में उत्कट भावनाओं तथा उच्च कलाभिरुचि का दर्शन होता है।

सन् 1921 की बीमारी के समय मृत्यु की छाया का अनुभव लेने के पश्चात् उसकी झलक श्री तांबे की कविता पर पड़ी। कविता में पुनः सम्पूर्ण परिवर्तन आया। यह परिवर्तन वे स्वयं भी महसूस करते थे। 'मै हमेशा ही रहस्यवादी रहा हूँ', यह बताते हुए भास्करजी लिखते हैं :

> 'रहस्यवाद का एक आवरण मेरी सारी कृतियों पर छाया रहा है। मैं एक निश्चित संदेश देने में सफल हो चुका हूँ—प्रेम और विश्वास का संदेश-जीवन में उनकी (प्रेम एवं विश्वास की) सभी विविध क्रियाओं उपयोगिताओं सहित।'' [दि. 1-9-1924]

महाप्रस्थान की कविताओं के साथ-साथ प्रेम-कविताएँ भी आती हैं। परन्तु इनमें प्रीति, भक्ति में ढल गयी है। श्री रा. अ. काले भास्करजी के कविता-लेखन के 1921 से 1927 के बीच के समय को सुवर्ण काल कहते हैं। [**तांबे: एक अध्ययन**, प्रथम आवृत्ति, पृ. 126]। इस समय की कविताओं में काव्य रचना संगीतानुकूल बन पड़ी है। भावनाओं का तादात्म्य भी दिखाई देता है। स्वयं भास्करजी ने श्री गायदेव को एक पत्र में लिखा है कि उनकी इस समय की कविता 'अब तक के लेखन कार्य में विवेक में सर्वाधिक परिपक्व, विचार में गम्भीर, भावना में तीव्रतम, और कला की दृष्टि में श्रेष्ठतम थी।'

[दि. 10-10-1920] श्री रा. अ. काले के मतानुसार इस समय की कविताओं जैसी रचनाएँ उन्होंने न कभी इससे पहले लिखीं न ही बाद में। ये कविताएँ प्रणय-भावना तथा गूढ़ानुभाव से परिपूर्ण है। व्यापक प्रेम की भावना व्यक्त करते-करते ऐसी कविता अनन्तरूपा हो जाती है। 'उस पार' की कविता 'इस पार' रहकर साकार हो जाती है। अधिक उत्कट बनती है। दूसरे की भावनाएँ महसूस कर सकनेवाले भास्करजी सुन्दर तादात्म्य चित्र रेखांकित करते हैं। इस समय उनकी कविता सचमुच ही विश्वव्यापी सार्वजनीन बन जाती है।

इसके पश्चात् कुछ समय के लिए काव्य की बहार कम हो गयी। जीवन को एक दूसरी दिशा प्राप्त हुई। काव्य रचना में रुकावट आयी। परन्तु इसके पश्चात् जब पुनः प्रतिभा पर वसंत छाया तो काव्य-रचना में अज्ञात जनों का, रसिकों का स्मरण करने वाला कवि दिखाई दिया। इसी समय की 'वंदन व्हावे हरि मम जीवित' जैसी कविताएँ ईश्वर की ओर का खिचाव सूचित करती हैं। पत्नी-प्रेम में भी तब परमेश्वर का दर्शन होता है। 'सहज तुझी हालचाल' जैसी कविताएँ साकार होती हैं। धीरे-धीरे 'पुनः पुनः दे दर्शन' कहने वाले तांबे पूर्णाहुति की ओर खिचते जाते हैं और फिर वे बड़े शांत चित्त से 'गाड़ी बदल लेते हैं।

**प्रदीघ लेखन काल .**

भास्करजी को लम्बी आयु मिली। सन् 1891 के आसपास स्कूली जीवन में उन्होंने कविता लिखना शुरू किया। उस समय से 1941 तक अर्थात् लगभग पचास वर्षों तक वे काव्य लिखते रहे। इस दीर्घ काल में लिखी गई भास्करजी की लगभग ढाई सौ कविताएँ आज उपलब्ध हैं। इस कालखंड के कुछ वर्ष काव्य रचना के बग़ैर भी गुजरे हैं, जब उनकी प्रतिभा की बहार फीकी-सी पड़ गयी थी। इस प्रकार हम देखते हैं कि उनकी काव्य रचना अस्थिर स्वभाव की रही। काव्य-लेखन सहज प्रस्फुटित तथा धीमी गति वाला है।

तांबेजी की कविताओं का चार भागों में विभाजन किया जा सकता है। सन् 1889 तक की कविता बीजावस्था में है। 1890 से 1919 तक प्रथमावस्था और 1920 से 1927 तक का काल सुवर्णकाल कहलाने का अधिकार रखता है। 1927 के पश्चात् उत्तरावस्था का काल है। इस समय से उनकी कविताएँ शात, गम्भीर हो जाती है। बहार फीकी पड़ने लगती है। वे स्वयं इस बात को महसूस करते थे।

भास्करजी की कविता अचानक फ़ूट पड़नेवाली नदी की बाढ़ जैसी है। कभी उसमें इतना ज़ोर आ जाता है कि वे लगातार अनेक कविताएँ लिखते चले जाते हैं। कभी वे अनेक वर्ष कविता लिखे बिना ही गुजार देते हैं। सन् 1900

से 1903 के बीच भी कुछ समृद्ध कविताएँ उन्होंने लिखीं। बहार का एक झोंका 1935 के उत्तरार्ध में भी आया। और 1911 से 1918 के बीच सात वर्षों के कालखंड मे उन्होने एक भी कविता नही लिखी। ऐसे ही छोटे-छोटे और भी अनेक अवकाश काल उनके जीवन में आये।

**काव्य का स्वरूप :**

तांबे जी की कविता पर दृष्टि डालते ही सर्वप्रथम जो बात ध्यान में आती है, वह है उसकी लघुता। उनकी कविताएँ लम्बी-चौड़ी न होकर सहज, सुदर और छोटी हैं। साथ ही वह आत्मनिष्ठ भी हैं। कही-कहीं दीर्घ कविताएँ लिखने का भी प्रयत्न उन्होंने किया। परन्तु वह उनका मार्ग नही था। कविता की शुरूआत भास्करजी ने अक्षरगण छद से ही की थी। छंदशास्त्र का उन्होंने अच्छा अभ्यास किया था। अक्षरगण वृत्त की उपजातियों—पृथ्वी, मंदारमाला, स्रग्धरा, शार्दूलविक्रीडित आदि छंदों का उन्होंने बड़ी सहजता से प्रयोग किया। परन्तु संपूर्ण रचनाओं की संख्या को देखें तो अक्षरगणवृत्त की रचनाएँ अल्प हैं।

सस्कृत के दो अथवा चार वृत्तबद्ध चरणों में पद्य अथवा मुक्तक भास्करजी ने रचे है। साथ ही, प्रारंभिक काल में 'डोळे हे जुलमी गड़े' (जुल्मी ये आँखें) गीत के लिए मराठी की 'लावणी' शैली का प्रयोग किया है। भास्करजी ने लोरी-गीतो की रचना भी कुशलता से की है। गाने के लिए उपयुक्त अनेक स्तोत्र भी उन्होंने रचे।

**अष्टपदी :**

जयदेव के 'गीत गोविंद' की रचना में आनेवाले 'अष्टपदी' काव्य-प्रकार का भी भास्करजी ने उपयोग किया है। इस मात्रात्मक गीतों में रागदारी का भी साथ होता है। केवल अष्टपद होने से यह अष्टपदी कविता नहीं बन जाती। प्रसंग-विशेष में नौ अथवा सात, तो कभी-कभी दस पद भी हो जाते हैं और काव्य-रचना को अष्टपदी ही कहा जाता है। अष्टपदावर्तनी होने के कारण ऐसे गीतों को अष्टपदी कहा जाता है। भास्करजी ने 7, 6, 5, और 4 छदों वाले गीतों की भी रचना की। परन्तु इसके बाद भी उनका रचनात्मक स्वरूप अष्टपदी का ही रहा। 'नववधू', 'प्रणयप्रभा', 'पतितपावन', 'लवंगलता', 'पादाकुलक' इत्यादि रचनाएँ अष्टपदी की ही है।

बचपन में संतकाव्यों के पठन के परिणाम स्वरूप भजन के स्वरूप की रचनाएँ भी भास्करजी ने कीं, तो उनकी कुछ कविताएँ उर्दू अंदाज मे लिखी गयी

हैं। अंग्रेजी 'लिरिक' (Lyric) के 'ओड' (Ode) नामक उपप्रकार का उपयोग भी भास्करजी ने अपनी उद्देश्यपूर्ण कविताओं में किया है। उनकी 'सुनीत' (सॉनेट) रचनाएँ अत्यंत सुंदर हैं। अंतिम दो पंक्तियों में कलात्मक 'पलटा' देने वाली 'काळेभोर विशाल केस' और 'गेली ज्योति विझोनिया' जैसी रचनाएँ उनका इस प्रकार की कविताओं पर प्रभुत्व सिद्ध करती हैं।

परन्तु इन सारी विविध काव्य-रचनाओं में भास्करजी के नाट्यगीत सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। ब्राऊनिंग के नाट्य-संवाद-गीतों ('Dramatic lyric') जैसी कविताओं से मराठी साहित्य जगत् को उन्होंने ही परिचित कराया।

**छंद-रचना की ओर खिंचाव :**

तांबे की भावनात्मक कविताओं का स्वाभाविक झुकाव जाति (छंद) रचना की ओर है। इस प्रकार की रचनाओं के अंतर्गत उनकी दो सौ के क़रीब कविताएँ आती हैं। कुछ कविताओं को देवल—किर्लोस्कर के नाटकों के गीतों की धुनें दी गयी हैं। उदाहरण के लिए श्री रा. आ. काळेले ने लिखा है कि भास्करजी ने 'मी कुमार तूं ही कुमारी', 'तस्करा हाती', 'ही कामाची तलवार', 'अगदिच तूं वेडी' जैसे नाटक के पदों तथा 'मुद्रिके राम टाकून आलिस', 'भुलाबाई', 'कंकण न मुटे रामाला' आदि जैसे पुराने गीतों की स्वररचनाएँ उपयोग में लायी हैं।

तांबे जी ने हल्के संगीत तथा कठिन नाट्य संगीत के बीच 'सुवर्ण-मध्य' का रास्ता अपनाया था। भावनाओं के प्रवाह को उचित दिशा मिल सके, इसलिए उन्होंने मीरा-कबीर-सूर के पदों जैसी रचनाएँ भी रचीं। विरह गीत लिखे। सन् 1920 के बाद की भास्करजी की कविता एक नये आकार में सामने आती है। इसमें प्रथम दो पंक्तियों द्वारा मुख्य विषय का वर्णन तथा बाद की चार पंक्तियों में उसका कल्पनारम्य विस्तार किया गया। इस प्रकार की लगभग पच्चीस कविताएँ भास्करजी ने चार महीने के काल में लिखीं। कविता के ऊपर पहले उसके योग्य गेय राग का नाम लिखने की प्रथा भी तांबे ने ही आरंभ की। यह है उनकी कविता का बाह्य स्वरूप।

**संगीत का महत्त्व :**

अपनी कविताओं के लिए उपयुक्त रागों के नाम कविता के साथ देने वाले तांबे काव्य तथा संगीत को एक दूसरे का पूरक मानते थे। एक का सौंदर्य दूसरे की सहायता से किस प्रकार बढ़ता जाता है, यह बताते हुए वे अपनी एक

कविता 'नदितीरी उभी ती दाट तृणी' के साथ राग जोगी का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। जोगी राग के स्वर इस कविता की काव्य-भावनाओं का सौंदर्य बढ़ाने में सहायता करते है। भास्करजी को संगीत का अच्छा ज्ञान था। नारायण भगवान नामक गायक के साथ उन्होंने सामवेद की स्वर-लिपि का अभ्यास किया था और उसकी टिप्पणी भी तैयार की थी। कविता तथा संगीत का बहनों जैसा नाता है। काव्य में संगीत का कितना महत्त्व है, यह वे अच्छी तरह जानते थे। उनकी कविता में संगीत एक आवश्यक अग बनकर आता है।

संगीत के असीम तेज तथा सामर्थ्य का वर्णन करते हुए भास्करजी कहते हैं :

> 'संगीत पहले ही अपने आप में एक अत्यंत तेजस्वी भाषा है। उसके भीतर भावनाओं को प्रगट करने की इतनी प्रबल शक्ति है, जितनी शब्दों में भी नही है; ऐसा कहना अतिशयोक्ति नही होगा···संगीत से मनुष्य झूमने लगता है, मोहित हो जाता है, तल्लीन हो जाता है···संगीत आँखों मे आँसू ला सकता है, अग-प्रत्यग रोमांचित कर सकता है···कभी हृदय भारी हो जाता है तो कभी कँप उठता है···कभी स्निग्ध हो जाता है तो कभी उद्वेग से जलने लगता है। संगीत इतनी सरल भावनाएँ उद्दीप्त करता है कि उनकी गहराई अथवा विस्तार को मापना असंभव हो जाता है। जिन भावनाओं की सीमा आँकना भी संभव नहीं उन्हे किन शब्दों द्वारा प्रगट किया जा सकता है ? इतनी तरल, चंचल, सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावनाओं को प्रगट करने की शक्ति जिस संगीत में है, उनके आगे शब्दो की क्या कीमत होगी ?' (**तांबे : व्यक्ती आणि कला**, पृ॰ 2, 150)

तांबे रागों के रसों तथा काव्य के भावरसों का संबध किस प्रकार संतुलित रखते थे, इस विषय में श्री नारायणराव गुणे का अनुभव काफी कुछ कह जाता है। वे स्पष्ट करते हैं,

> 'तांबे की कविताओं या पदों की पक्ति में किसी भी प्रकार का परिवर्तन किए बिना गायक गा सकते हैं। उनकी कविताएँ उनकी गेय रागों के साथ गायी जानेवाली पुरानी हिन्दी 'चीजों' (रचनाओं) से मिलती हैं। रचनाओं की उपयुक्तता के कारण उनके काव्य को शास्त्रीय संगीत की रागदारी की संगत प्राप्त हुई है। मात्रा की गिनती के साथ साथ 'सम' का भी ध्यान इन कविताओं की रचना में रखा गया है। यही कारण है कि उत्तर भारत के शास्त्रीय संगीत की पद्धति में मराठी गीतों को बाँधने मे भास्करजी सफल हो सके।'
>
> [**राजकवि तांबे**, ना॰ बा॰ पराड़कर, पृ॰ 112-115]

संगीत पर अत्यंत प्रेम तथा भक्ति के कारण भास्करजी ने 'तू कवण जगातील ललना', 'छेड़ सखी ! दुर्गा मधु रागिणी' और 'संगीतकलेप्रत' कविताएँ संगीत देवता को उद्देश्य कर लिखी हैं।

भारी-भरकम या बोझिल शब्दों द्वारा प्रगट किए गए काव्य की अपेक्षा संगीतानुकूल कला भावकाओं को उद्दीप्त करने में अधिक सक्षम होती है। तांबे की प्रतिभा हृदय के भाव संगीत को उत्स्फूर्तता से व्यक्त करती है। उनकी कविता पढते समय 'शब्दों में संगीत की प्रस्तुति ही कविता है' अथवा 'स्वरों में काव्य प्रस्तुति ही सगीत है' का अनुभव मिलता रहता है। सतही अर्थ से गहरी भावना व्यक्त करने तथा उसे रसिक वर्ग तक पहुँचाने का कार्य उनकी कविता अपने सहज संगीत की मदद द्वारा स्वभाविक रूप से करती है। प्राध्यापक म. श्री. पंडित कहते है,

> 'कवि टेनिसन के लिए कहा गया वाक्य 'कुशल संगीत में निबद्ध उत्कृष्ट शब्दांकन—भास्करजी के लिए भी उतना ही सामर्थक है।'
> [**तांबे आणि त्यांचे गीतिकाव्य**, पृ॰ 64]

भास्करजी के मतानुसार प्रत्येक राग की एक विशेष प्रकृति होती है एवं भावनात्मक प्रकृति का राग अथवा स्वर मिलने से कविता की श्रेष्ठता और ऊँचे दर्जे की ही जाती है। वे लिखते है :

> 'प्रत्येक कविता का अपना एक विशेष, मैं तो कहूँगा कि एक मौलिक संगीत होता है। उन्हें विभिन्न रागों में निबद्ध किया जाना चाहिए।' [**तांबे—एक अध्ययन**, रा. अ. काळेले, पृ. 41]

भास्करजी की प्रतिभा संगीतात्मक होने के कारण उनकी कविता भी गीतात्मक तथा श्रुतिमनोहर रही है। तांबे के मतानुसार कविता अपने शब्दों के साथ स्वर भी लेकर आती है अत: उसे उसी (उपयुक्त) राग में गाना चाहिए। अपनी कविता को वे 'गीत' (सांग) कहते थे। उनकी कविताएँ संगीतमय आवेश के साथ जन्म लेती थीं। इसीलिए वे कहते थे : 'मैं हमेशा ही गीत लिखने वाला कवि रहा हूँ।' कविता के ध्रुपद या ध्रुव पद का अन्य पदों (stanzas) मे संबंध केवल यमक के लिए नहीं होता; गीतों में ध्रुपद-काव्य के भावस्वरों का षड्ज होता है। ध्रुपद के ये स्वर अन्य पदों में आ जाते हैं। संगीत ने तांबे जी की कविताओं को प्रभावी एवं सुंदर बनाया। कविता की मूल भावानुभूति को नवचैतन्य देकर संगीत का सुंदर मेल कर सकने वाले भास्करजी साहित्य के पहले 'वाग्गेयकार' हैं।

**तांबे जी का काव्य गायन :**

संगीत की जानकारी होते हुए भी तांबे स्वयं विशेष नहीं गा सकते थे। परन्तु उनकी कविताएँ वे अपने तरीके से गाते अवश्य थे। श्री माधवराज पट-वर्धन के मतानुसार, 'उनकी वाणी थकती न थी। श्रोताओं के कर्ण तृप्त होकर भी अतृप्त रह जाते थे।"

[**तांबे—एक अध्ययन**, रा० अ० काळेले, आवृत्ति 2, पृ० 17]

श्री वि० द० घाटे लिखते हैं—

'इतनी बेकार आवाज वाला और साथ ही इतनी सुंदर कविताएँ गाने वाला कवि मैंने आजतक नहीं देखा। अपनी कविता वे आवेग तथा आवेश के साथ हाथ हिला-हिलाकर कहते थे। कविता समाप्त होते ही तुरंत उसका अंग्रेजी में अनुवाद भी सुनाते थे। उदाहरण के लिए अपनी पसंद के अंग्रेजी कवियों की ढेरों पंक्तियाँ साभिनय सुनाते थे और अंत में काव्य कला पर अंग्रेज़ी में भाषण देते थे। कविता तो केवल तांबे जी को ही गानी चाहिए।' [**दिवस असे होते**, पृ० 84-85]

काका गाडगीळ अपने आत्मचरित्र **'पथिक'** में थोड़ा-भिन्न विचार प्रस्तुत करते है। उसके मतानुसार तांबे जी का काव्यग-ायन सुनते समय गायक के गाने के साथ-साथ गीत के रसपूर्ण अर्थ का भी आनंद मिलता है और दोनों के मिश्रण से एक विशेष तृप्ति एव आनद का अनुभव होता है।

तांबे जी को गायक कहना विचित्र लगता है। उनकी आवाज़ ही ऐसी थी। परन्तु अपना विषय वे श्रोताओं के सम्मुख साक्षात् साकार कर देते थे। श्री काकासाहब पुराणिक ने अपने चरित्र-ग्रंथ में भास्करजी के काव्य गायन के संदर्भ में महत्त्वपूर्ण टिप्पणी दी है। वे लिखते हैं :

'कभी-कभी कमरे में मैं अकेला ही होता था, तब भी तांबे जी बड़ी तल्लीनता से अपनी नवरचित कविता गाते सुनाते थे। जो कविता वे गाते थे, उसका आशय तथा मर्म वे अपने हाव-भाव, आवाज़ के उतार-चढ़ाव तथा कोमल उच्चारण द्वारा श्रोताओं को समझाते थे। उनके काव्य गायन से कविता में वर्णित विषय का हू-ब-हू चित्र श्रोताओं के सम्मुख तैयार हो जाता था।'

भास्करजी गायक नही थे परन्तु उनकी कविताएँ रागदारी के लिए अनुकूल होने के कारण सारे महाराष्ट्र में बड़ी लोकप्रिय हुई। उनके गीत वा. गो. मायदेव से लेकर आज के मंगेशकर परिवार तक सबने गाये। अमर किये। वे सचमुच ही 'भारत में विशुद्ध काव्य की अभिव्यक्ति' बने।

# 7

# उपसंहार

सन् 1891 में भास्करजी ने कविताएँ लिखनी शुरू कीं। सन् 1900 में उनकी कविताएँ प्रकाशित होने लगीं। उनकी कविताओं को पूरी आस्था के साथ संपादित करके श्री मा. गो मायदेव ने सन् 1920 में उनकी कविता-संग्रह का पहला खंड प्रकाशित किया। साथ ही महाराष्ट्र के कोने-कोने में उनकी कविता पहुँचायी। 1927 में कवि अज्ञातवासी उर्फ़ दि. गं. केलकर ने तांबे जी की कविता का दूसरा भाग संपादित करके उनकी कविता का सुवर्णकाल प्रकाशित किया। भास्करजी के इकसठवें जन्मदिवस के अवसर पर श्री माधवराव पटवर्धन ने ताबे जी से परामर्श लेकर उनकी समग्र कविता की अधिकृत आवृत्ति प्रकाशित की। यही आवृत्ति सर्वत्र प्रामाणिक लिखी गयी। 'तांबे—व्यक्ति आणि कला' नामक गौरव ग्रंथ का प्रकाशन भी इसी समय में हुआ। 1914 में तांबे जी की मृत्यु हुई। 1891 से 1914 के पचास वर्षों के कालखंड में भास्कर जी ने ढाई सौ के लगभग कविताएँ लिखीं।

1885 से 1905 मे महाराष्ट्र के कवि केशवसुत ने काव्यलेखन किया। इस समय में केशवसुत ने अंग्रेजी की अनेक नयी काव्य-विषयक संवेदनाओं को, कल्पनाओं को मराठी में स्थान दिया। स्वच्छंदवादी नवकाव्य लिखनेवाले केशवसुत 'नये मनु के नये सिपाही' बने। काव्य द्वारा उन्होंने नया आशय प्रस्तुत किया और संपूर्ण शक्ति से काव्य-क्षेत्र में सतत्, नये-नये प्रयोग किये। काव्य को समाजोभिमुख किया। नवजागरण की नयी संवेदना उत्पन्न की। उनसे स्फूर्ति लेकर अपने को केशवसुत संप्रदाय का सदस्य मानने वाली गोविंदाग्रज, विनायक बालकवि, रेंदालकर इत्यादि कवियों की दूसरी पीढ़ी 1905 से 1920 के बीच महाराष्ट्र के काव्य-क्षेत्र में आयी। इस काल में कविता व्यापक एवं समृद्ध हुई। यह सारा विकास कवि केशवसुत के प्रभाव में हुआ।

इस काल में महाराष्ट्र की सामाजिक एवं राजनीतिक हलचलों पर भी दूर मध्यभारत में रहनेवाले तांबे ध्यान रखते थे। परन्तु 1920 में जिस समय तांबे जी की कविता महाराष्ट्र में सर्वत्र लोकप्रिय हुई उस समय केशवसुत संप्रदाय की कविता से प्रभावित दूसरी पीढ़ी का भी अस्त हो चुका था। मराठी कविता मेले-ठेले जैसी जगहों पर गायी जाने लगी थी। श्री वा. गो. मायदेव ने ताबे जी कविता को समझ कर गाना शुरू किया। महाराष्ट्र के घर-घर में उन्होंने तांबे की कविता को स्थान दिलाया। माधव जूलियन और उनका 'रवि-किरण मडल' इसी समय में मराठी काव्य-सृष्टि में आया था। इस मंडली पर तांबे की कविता का प्रभाव था। केशवसुत की छत्रछाया में पल रही मराठी कविता और तांबे जी की कविता सुनने वाले रसिक श्रोताओं को तांवे जी की कविता में कहीं कुछ भिन्नता एवं नयापन महसूस हो रहा था। माधव जूलियन, गिरीश, यशवंत, घाटे आदि 'रविकिरण मंडल' के लोगों को तांबे की कविता अधिक आत्मीय एवं रुचिकर लगने लगी थी।

केशवसुत तथा तांबे जी की कविता एक साथ पढ़नेवाले समीक्षकों को तुलना करने का मोह होना स्वाभाविक ही था। परन्तु केशवसुत के प्रभाव के कारण तांबे जी की कविता के विषय में वे स्वतंत्र रूप से विचार नहीं कर सके। केशवसुत के सामाजिक प्रबोधन मूलक विचार, क्रांतिकारी तत्त्व, मूर्तिभंजकता तथा वास्तविकता जैसे मूल्यों के आधार पर कुछ समीक्षकों को भास्करजी की कविता गौण लगी। वास्तव में तांबे तथा केशवसुत दोनों ही रोमांटिक वृत्ति के कवि थे। सृष्टि के सौंदर्य में दोनों को विशेषता दिखाई देती थी। कविताएँ साकार होती थी। परन्तु दोनों की रोमांटिक तथा रहस्यवादी दृष्टि में अंतर था; इस बात का सही आकलन न हो सकने के कारण मूल्य मापन में यह भूल हो गयी।

सृष्टि तथा मानव जीवन की सौंदर्यानुभूति मे जिस सुदरता, विलक्षणता तथा अलौकिकता का प्रत्यय तांबे को आता था, वह वस्तु के अंतः सत्त्व का, उसकी कल्पकता का विलासात्मक रूप होता था। विश्वांतर्गत गूढ़ रहस्य के साक्षात्कार से तथा उसकी असदिग्ध संवेदना में उनकी कविता प्रेरणा पाती थी। तांबे जी के विचारों की आस्तिकता यहाँ कविता के रास्ते में रुकावट नहीं बनती थी। परन्तु निश्चय ही वह शक्ति थी, उनकी प्रेरणा थी। विश्व के अतर्गत एक मूल तत्त्व को समझकर उसका सामना कर सकनेवाले तांबे का सौंदर्यवाद तथा रहस्यवाद आधुनिक संदर्भ के आत्मसाक्षात्कारवाद का ही रूप है। यह उनकी 'नववधू', 'सगुणशक्तीरूप पत्नी' तथा 'तृणाचे पाते' आदि कविताओं द्वारा सिद्ध होता है।

केवलाद्वैतवादी तांबे की अपेक्षा अज्ञेयवादी केशवसुत एक अलग अर्थ में

अपूर्व वस्तुदर्शन से मोहित हो जाते हैं। रहस्य स्पष्ट नहीं हो पाता। उसे समझने के लिए वे बेचैन हो जाते हैं। और जब वह हाथ नहीं आता तब 'हरपल्या श्रेया' [हित (सुख) खो गया] कहकर केशवसुत खिन्न हो जाते हैं। आधुनिक मराठी साहित्य का रहस्यवाद उदासीनता का स्वर लिए हुए है। परन्तु तांबे के रहस्यवाद में अनादि अनत विश्व रहस्य की भेंट का अपूर्व, अमर्यादित आनंद दिखाई देता है। इस मूलभूत भेद के कारण केशवसुत एवं तांबे की तुलना करना उपयुक्त नहीं जान पड़ता।

तांबे का विश्वास था कि सामाजिक सुधार या प्रबोधन जैसे कार्य कविता द्वारा नहीं किये जाते। इसीलिए उनकी कविता मे रसात्मक अलौकिक रूप से प्रगट होनेवाली भावनोत्कटता का ही प्रत्यय आता है। प्रबोधनवादी केशवसुत संप्रदाय की कविताएँ उन्हें बहुत स्वीकार नहीं थीं। तांबे के मतानुसार कवि केवल आत्मा की अभिव्यक्ति व्यक्त करने वाला प्रतिभावान् कलाकार न होकर सृष्टि की सारी जीवात्माओं से तादात्म्य पाने की शक्ति रखनेवाला कलासार है। अत: उनके भीतर का कलाकार रवीन्द्रनाथ ठाकुर की तरह प्रसंगानुसार किसी भी आयु तथा वृत्ति का बनकर उसकी सवेदना तथा भावना का चित्र साकार कर सकता है। यही कारण है कि केशवसुत सप्रदाय को ऊँचा दिखाने का प्रयत्न करनेवालों को दूसरे के हृदय की भावना व्यक्त कर सकनेवाले कवि-मन का मूल्यांकन करना कठिन हो जाता है।

नये-नये छंद गढ़ने वाले तथा अक्षरगणवृत्त के नियमों को प्रमाण न माननेवाले कवि केशवसुत की लचीली छंद-मात्रा-रचना संगीत के लिए अनुकूल रचना नहीं है। उनके सप्रदाय के अन्य कवियों की कविताओं में भी संगीत का अभाव दिखाई देता है। इसके विपरीत भास्करजी संगीत को कविता की आत्मा मानते थे। उनकी कविता का जन्म ही कवि हृदय के संगीतमय आवेश से होता था। उनकी कविता अपरिहार्य रूप से संगीत द्वारा प्रगट होती है। वे मराठी साहित्य के वाग्गेयकार थे।

'लोकमान्यांचे महानिर्वाण', 'महात्मा गाँधी यांची असहकारिता' अथवा 'रुद्रास आवाहन' में भी भास्करजी उपदेश अथवा प्रबोधन का प्रयत्न नही करते। न ही वे जनजागृति का कोई सिद्धांत प्रस्तुत करते हैं। अपनी अतःप्रेरणा से वे एक भावनात्मक चित्र खीचते हैं। यह भावपूर्ण चित्रण उनकी दृष्टि में अधिक महत्त्व रखता है।

तांबे जी की प्रणय कविताएँ महाराष्ट्रवासियों के हृदय जीत लेती है। परभूत मराठी समीक्षकों को हमेशा किसी अन्य बड़े कलाकार से तुलना करके ही प्रत्येक कलाकार को परखने की आदत होने के कारण, रवीन्द्रनाथ की तथा तांबे जी की कविताओं में साम्य दिखाई देते ही वाचकों के मन में विकल्प

निर्माण किया गया। वस्तुत: ऊपर से दिखनेवाली समानता में गहराई से देखने पर असमानता भी हो सकती है। अत: तांबे जी की विचार-दृष्टि तथा कला विषयक मतों को समझनेवालों को अन्यथा विवाद उपस्थित करने की आवश्यकता महसूस नहीं होती।

पचास वर्षों की दीर्घकालावधि में तांबे ने कभी-कभी दीर्घ कविताएँ भी लिखीं। उनके सुंदर शिशु गीतों ने उन्हें महत्त्वपूर्ण स्थान दिलाने मे मदद की। 'नाट्यगीत' मराठी कविता को उनकी महत्त्वपूर्ण देन है। कभी-कभी 'रुद्रास आवाहन' जैसी कविता वे रेखांकित करते हैं। उनकी हिन्दी, उर्दू तथा संस्कृत कविताएँ भी मराठी जितनी प्रभावशाली हैं। लेकिन तांबे की कविता की आत्मा उनके प्रणय-गीतों तथा रहस्यवादी कविताओं में है। यह प्रणय तथा रहस्यवाद विश्व में छिपे रहस्य के साक्षात्कार द्वारा अभिव्यक्त हुआ है। इसीलिए भास्कर तांबे 'इस पार' से ही 'उस पार' का अविनाशी सौंदर्य एकटक निहारनेवाले एकमेव आधुनिक मराठी के गेय कवि है। चार्ल्स पीटरार्च नामक फ्रेंच लेखक का उनके बारे में कथन बिल्कुल सार्थक लगता है। वे कहते हैं—

"Tambe is not merely a name but an expression of the purest lyric in India."

[तांबे केवल एक नाम नहीं, वह भारत में विशुद्धतम गीति काव्य की अभिव्यक्ति है।]

# परिशिष्ट I

## तांबे का जीवन वृत्त

| | |
|---|---|
| 1873 | —अक्टूबर, 27, मुंगावली में जन्म-बचपन-शिक्षा। |
| 1893 | —देवास, प्रवेश परीक्षा उत्तीर्ण, देवास पाठशाला में नौकरी—देवास के राजपुत्र खासेसाहब के लिए शिक्षक की नौकरी। |
| 1897 | —रतलाम के जावडकरजी की कन्या बारुबाई से विवाह। |
| 1901 | इन्दौर-देवास के युवराजों के शिक्षक, देवास राज्य के वकील। |
| 1909 से 1920 | —गुदरखेडा, पिप्लोदा (दीवान)<br>—प्रतापगढ़ में पुलिस सुपरिटेंडेंट फिर न्यायाधीश। |
| 1920 | —प्रथम काव्यसंग्रह प्रकाशित (संपादक : श्री मायदेव) |
| 1921 से 1923 | —अजमेर ग्वालियर सरदार पुत्रों के पालक श्यापुर बड़ोदा सुपरिटेंडेंट। |
| 1926 | —ग्वालियर में परीक्षा-पंजीयक, इन्दौर में संपन्न पहले मध्यभारतीय मराठी कवि सम्मेलन के अध्यक्ष। |
| 1927 | —'तांबे यांची कविता' भाग 2 प्रकाशित<br>(संपादक—दि. गं. केलकर—अज्ञातवासी) |
| 1932 | —कोल्हापुर मे महाराष्ट्र साहित्य सम्मेलन के अंतर्गत हुए कवि सम्मेलन के अध्यक्ष। |
| 1934 | —इकसठवे जन्मदिवस पर सर्वत्र अभिनन्दन। |
| 1935 | 'तांबे यांची समग्र कविता' स. माधव जूयलियन (डॉ. मा. यं. पटवर्धन), 'तांबे : व्यक्ती आणि कला' गौरवग्रंथ प्रकाशित। |
| 1937 | —सेवानिवृत्ति; ग्वालियर का राजकवि पद। |
| 1939 | 'ताबे याची समग्र कविता' (सं. नासिककर-दाणी) |
| 1941 | दिसंबर दि. 7 को ग्वालियर में निधन। |

# परिशिष्ट II

## तांबे की साहित्यिक रचनाओं की सूची

**स्फुटलेख :** कवितेचे मूळ अथवा महाश्वेतेचे निवास स्थान
The birth of muse
Poetry and its afflatus
आधुनिक चिंतनपर काव्य
ललितकला निसर्गाची नक्कल आहे काय ?
कलेचा उद्भव
संगीताचे मराठीकरण

**भाषण :** मध्य भारतीय मराठी कवि सम्मेलन, इन्दौर 1926
महाराष्ट्र साहित्य सम्मेलन, कोल्हापुर 1932

**प्रस्तावना :** वाग्वसंत (रा. अ. काळेले)
भाव कुसुमांजलि (सौ. मनोरमाबाई नावलेकर)
अज्ञातवासीची कविता (दि. गं. केळकर)
मालविका (मध्यभारतातील मराठी कवींच्या निवडक कविता)

**अभिप्राय :** 'स्वस्तिक' काव्यसंग्रहावर विहंगम, जनवरी 1938

**ग्रंथ :** 'कला आणि नीति' (1932)

**अन्य :** तांबे : व्यक्ती आणि कला : तांबे वाढदिवस मंडळ, 1935;
अप्रकाशित तांबे—सं० डॉ. व. दि. कुलकर्णी एवं जयंत वष्ट
मुंबई विद्यापीठ, 1974

**नाटक :** भयंकर प्रमाद (अप्रकाशित, अनुपलब्ध)

**खंडकाव्य :** वियोगिनी (अनुपलब्ध)
पुंगीवाला (रूपान्तरित)

**स्फुट काव्यमाला :** सरोवर आणि कमळे
प्रियेस

**संकलित स्फुट काव्य :**

भास्कर रामचन्द्र तांबे यांची कविता (1920) वा. गो. मायदेव
तांबे यांची कविता-भाग 2 (1927) दि. गं. केळकर
तांबे यांची समग्र कविता (1935) डॉ. म.-य. पटवर्धन
तांबे यांची समग्र कविता (1939) नाशिककर-दाणी
तांबे यांची समग्र कविता (1945) वा. गो. मायदेव
तांबे यांची समग्र कविता (1953) रा. श्री. जोग

**विशेष :** तांबे यांच्या कवितांतील वेचे (1929) वि. ग. दाणी
प्रणयप्रभा—सं. रा. श्री. जोग

## तांबे-विषयक साहित्य

**पत्रिकाओं के विशेषांक** :

महाराष्ट्र साहित्य पत्रिका, डिसेंबर 1973
लोकराज्य, ऑक्टोबर 1974 (मराठी व अंग्रेज़ी)

**ग्रंथ** :

तांबे : व्यक्ती आणि कला—तांबे वाढेदिवस मंडळ 1935 सं. वि. ग. दाणी व इतर
राजकवि तांबे—न. बा. पराडकर, 1942
तांबे यांचा साहित्यविषयक पत्रव्यवहार—सं. ना. बा. पराडकर, 1949
तांबे : एक अध्ययन—रा. अ. काळेले 1956, 1974
तांबे आणि त्यांचे गीतिकाव्य—भ. श्री. पंडित 1972
तांबे : साहित्यविचार—वा. रा. ढवळे, रा. अ. काळेले, 1974
मधुघट रसदर्शन—सं. वा. रा. ढवळे, 1974
अप्रकाशित तांबे—(सं.) व. दि. कुलकर्णी, जयंत वष्ट, 1974
तांबे : एक अभ्यास—सौ. आशासाव देकर, 1979
तांबे आणि केशवसुत—श्री. के. क्षीरसागर, 1980

# तांबे की महत्त्वपूर्ण कविताएँ

| शीर्षक | रचना-स्थान | समय |
|---|---|---|
| 1. डोळे हे जुलमि गडे | देवास | 1891 |
| 2. तीनीसांजा सखे मिळाल्या | इंदौर | 18.7.1902 |
| 3. गेली ज्योति विझोनिया | देवास | 3.8.1905 |
| 4. राजकन्या आणि तिची दासी | इंदौर | 23.7.1904 |
| 5. हे कोण गे आई | इंदौर | 13.5.1907 |
| 6. काळेभोर विशाल केस | गुदरखेडा | फरवरी 1910 |
| 7. कुणि कोडे माझे उकलिल का ? | प्रतापगढ़ | 5.9.1920 |
| 8. मग विसर हवा तर हा क्षण गे ! | प्रतापगढ़ | 8.9.1920 |
| 9. घट भरे प्रवाही बुडबुडुनी | प्रतापगढ़ | 14.7.1920 |
| 10. बघुनि तया मज होय कसेसे ! | प्रतापगढ़ | 23.9.1920 |
| 11. भयचकित नमावे तुज रमणी ! | प्रतापगढ़ | 30.9.1920 |
| 12. ते दूध तुझ्या त्या घटातले | प्रतापगढ़ | 3.10.1920 |
| 13. नववधू प्रिया मी | प्रतापगढ़ | 12.10.1920 |
| 14. घनतमी शुक्र बध राज्य करी ! | इंदौर | 29.10.1920 |
| 15. रे अजात अज्ञात सखेजन | इन्दौर | 16.11.1920 |
| 16. रुद्रास आवाहन | इन्दौर | 3.12.1920 |
| 17. महाप्रस्थान | अजमेर | 4.8.1921 |
| 18. निजल्या तान्ह्यावरी | अजमेर | दिसबर 1921 |
| 19. कळा/ज्या लागल्या जीवा | अजमेर | 30.1.1922 |
| 20. घट भरा शिगोशिग | अजमेर | 8.2.1922 |
| 21. सहज तुझी हालचाल | लश्कर, ग्वालियर | 3.4.1927 |
| 22. तृणाचे पाते | लश्कर, ग्वालियर | 1927 |
| 23. रिकामे मधुघट | लश्कर, ग्वालियर | 1933 |
| 24. पूर्णाहुती | लश्कर, ग्वालियर | 14.8.1935 |